VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

OCTOBER 2025

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 41 ◆ अंक 4 ◆ अक्टूबर 2025

www.hindi.org Year 41 Volume 4 A Lingo-Cultural Hindi quarterly Published by International Hindi Association October 2025

"जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुदधृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान प्रसीदतु ।।"

ज्योति-चरण

उतरो तम पथ पर ज्योति-चरण
उतरो..... उतरो..... उतरो।

पद चिह्न बने नखतावलियाँ,
झूमे दिशि दिशि दीपावलियाँ
जन शुभ युग मंगल किरणों की,
छवि मांग रहा तुमसे कण कण।
उतरो..... उतरो........ उतरो।

अवनी अम्बर के अधर मिले,
मानव संस्कृति के सुमन खिले
जन मानस की लहरी करले,
पावन ज्योत्स्ना का पुण्य वरण।
उतरो..... उतरो..... उतरो ।

तुम छिपे यहीं यमुना तट पर,
मोहन भरते मुरली का स्वर।
दो नवल रश्मि जग को जिससे,
अणु अणु आलोकित हो क्षण-क्षण।

उतरो ..... उतरो ..... उतरो
उतरो तम पथ पर ज्योति चरण....उतरो!

–सुमित्रानंदन पंत

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

International Hindi Association

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.misra@hindi.org
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

श्रीमती अर्चना पांडा, डिजीटल मीडिया एडिटर
Mrs. Archana Panda, Digital Media Editor
Email – panda_archana@yahoo.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bhati Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीएँफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

संस्थापक – डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

डॉ. शैल जैन (OH) अध्यक्ष
Dr. Shail Jain, President 330-421-7528 president@hindi.org

श्री संजीव जायसवाल (TX) सचिव
Mr. Sanjeev Jaiswal, Secretary 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री संजीव जायसवाल
Mr. Sanjeev Jaiswal (TX) 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री उमेश कुमार
Mr. Umesh Kumar (TN) 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

डॉ. राकेश कुमार
Dr. Rakesh Kumar (IN) 317-730-4086 arksri@yahoo.com

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 president@hindi.org

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

श्री अश्विनी भारद्वाज
Mr. Ashwani Bhardwaj NE Ohio 216-926-7890 ashwani_69@yahoo.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

श्रीमती कमला पंचाल
Mrs. Kamla Panchal New York, NY 516-279-6612 kamlapanchal@aol.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia,PA 484-425-7734 vireshsingh999@gmail.com

श्रीमती विद्या सिंह
Mrs. Vidya Singh Indiana 317-514-6857 ihaindiana@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :

अनुज्ञा बुक्स

(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)

1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032
CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com
salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

1. संपादकीय	पहुँचेंगे तो कहेंगे –*रमेश जोशी*	5
2. विशेष आलेख	जीवन में साहित्य का स्थान –*प्रेमचंद*	6
3. विशिष्ट शृंखला ज्ञानपीठ पुरस्कार 1983	मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास' –*डॉ. दीपक पाण्डेय*	9
4. सरोकार	सोशल मीडिया और भाषाई प्रदूषण –*रविकांत*	12
5. भारत की खोज	पंडित नेहरू : अनुवाद/संक्षेपण – डॉ. *निर्मला जैन*	15
6. महाभारत का चित्रयुक्त फारसी अनुवाद	'रज़्मनामा' संकलित	19
7. संस्मरण	सच्चे नायक की पहचान – *सृजनपाल सिंह*	21
	स्थान काल को लाँघते विश्वव्यापी गांधी –*रामशरण जोशी*	23
	नेताजी सुभाष का एक अनुभव	33
	अल्बर्ट आइन्स टाइन की टेबल – *रंजन शर्मा*	37
	महाभारत सीरियल के प्रसारण का दिन	20
8. लघुकथा	कुछ जरूरी बातें – डॉ. *अशोक भाटिया*	27
	कुछ प्रसिद्ध लघुकथाएँ – प्रस्तुति डॉ. *अशोक भाटिया*	29
	आखिर क्या होती है लघुकथा – *इंदुकांत आंगिरस*	30
9. मजे मजे में	बुद्धिप्रकाश – *संपत सरल*	31
10. इतिहास	भगत सिंह के गद्दार और तरफ़दार – *सुसंस्कृति परिहार*	34
11. शताब्दी-स्मरण	*मोहन राकेश / गोपालदास नीरज*	35
12. उत्सव-पर्व-प्रसंग	किसका ग्रहण और किसका पिंडदान – *राकेश अचल*	36
13. कला जगत	महर्षि रतन थियम् – *ओंकारेश्वर पांडे*	38
14. एक पत्र	विवेकानंद का ईश्वर	39
15. किताबें	मिथकों से विज्ञान तक : *गौहर रज़ा : मुशर्रफ अली*	40
	निवेदन : *धर्मानंद कोसाम्बी* : अनुवाद - *रंजना अरगड़े*	44
16. नोबल कथा	ग्राज़िया देलेद्दा –*डॉ. चारु सिंह*	42
	ग्राज़िया देलेद्दा : कहानी : फटा हुआ बूट : अनुवाद – *सुखबीर*	41
17. सरोकार	असत्य के निष्क्रिय उपभोक्ता –*किंजल आलोक*	46
18. उत्सव-पर्व-प्रसंग	राम की अग्निपरीक्षा –शशिकान्त जोशी	47

गीत / ग़ज़ल / कविता

सुना है – *जेहरा निगाह* / 11; वे बिहार में नहीं मिलेंगे – *मणिमाला* / 14; पुल – *सुरजीत पातर* / 24; नंबर 48 की बस – *सेलिना चौबे* / 24; अभी भी बचे हैं – *मदन कश्यप* / 24; सदैव प्रासंगिक गांधी – *सदानंद शाही* / 25; वे काम से लौटती है – डॉ *लक्ष्मीकांत* / 26; जीवन की रामलीला – *ज्ञान प्रकाश आकुल* / 26; मेरी नानी– *भारती मिश्र* / 33; पताकाएँ –सीमा सिंह / 37; छुट्टी की अर्जी का मज़मून – *ओमप्रकाश तिवारी* / 45

विविध : रणजीत मानवतावादी पुरस्कार / 22; बधाई / श्रद्धांजलि / 11

आवरण : 1. पृथ्वी को बाढ़ से बचाने वाला वराह भगवान की मूर्ति (मध्यप्रदेश) 2. ज्योति चरण– *सुमित्रानंदनपंत* 3. सीधी सी बात : कविता; *पाब्लो नरूदा* : अनुवाद- *मंगलेश डबराल* 4. भ्रम सिर्फ बारी का है : हिमालयांचल में तबाही : *अमिता तिवारी*

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association
A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** ____________________

First Name: ____________________ **Last Name:** ____________________

Email ID: ____________________ **Mobile Number:** ____________________

Street Address: ____

City: ____________________ **State:** ____________________

Postal Code: ____________________ **Country:** ____________________

Spouse's Name: (optional) ……………………………………………………………………………………..

Membership: Select one ☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD

☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐

There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?

(Check all that apply)

☐ Hindi/English Content Writing
☐ Information Technology, Website
☐ Social media, Digital Marketing
☐ Fundraising, Sponsorships
☐ Public/Government Relations
☐ Hindi Education
☐ Graphics, Video
☐ Organization
☐ Legal, Compliance
☐ Sales, Support
☐ Other (please specify): ____________________

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

सम्पादकीय

पहुँचेंगे तो कहेंगे

कबीर और तुलसी दोनों अपने अपने समय के दो अद्‌भुत व्यक्तित्व रहे हैं।

तुलसी अपनी बात कहने के लिए कथा का सहारा लेते हैं। वे खुद कुछ नहीं कहते। उनके पात्र समय आने पर बोलते हैं। उस बोलने के पीछे एक पूरी कथा होती है जैसे बचपन में नीति और बोध की कथाएं पढ़ते थे। कथा कुछ भी हो सकती थी। उसके पात्र जीव-निर्जीव, जड़-चेतन कोई भी हो सकते थे। आप प्रश्न नहीं कर सकते थे कि ढेला चींटी के कैसे बात कर सकता है? बस, मतलब शिक्षा से है और यदि समझ में न आये तो कोई बात नहीं। अंत में लिख भी दिया जाता था कि इस कथा से यह शिक्षा मिलती है।

देखें, बात नीति की और उसे रावण को समझा रही है शूर्पनखा। लक्ष्मण द्वारा नाक कान काटे जाने के बाद, राम द्वारा खर दूषण के वध के बाद वह फ़रियाद लेकर रावण के पास पहुँचकर कहती है–

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥ 4॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥ 5॥

भावार्थ

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है? नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में व्यर्थ श्रम ही हाथ लगता है। ऐसे ही विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरा पान से लज्जा, नष्ट हो जाते हैं॥ 4-5॥

इसी प्रकार बालकाण्ड में राजा प्रतापभानु को छल से ब्राह्मणों के श्राप में उलझाकर सपरिवार मरवा देने की योजना बनाने वाला, साधु वेश धारण किए उसका ही दुश्मन राजा उसके लिए उपचार स्वरूप तंत्र-मंत्र और ऐसा ही कुछ प्रावधान करने के प्रसंग में कहता है–

अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोरा॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराऊ॥

भावार्थ

मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा, क्योंकि तुम, मन, वाणी और शरीर तीनों से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मंत्रों का प्रभाव तभी फलीभूत होते हैं जब वे छिपाकर किए जाते हैं।

ऐसे ही अपनी बात कहने के लिए तुलसी महाकाव्य का पूरा कथानक रचते हैं। और ऐसे ही महाभारतकार वेदव्यास। अब उसमें से सत्य और तथ्य का अमृत निकाल पाना सबके बस का नहीं होता। अधिकतर तो द्रौपदी का चीरहरण, धनुष यज्ञ, स्वर्ण मृग प्रसंग, लंका दहन, हनुमान के संजीवनी लाने आदि के तमाशे में ही उलझ जाते हैं।

लेकिन कबीर! सारे रामायण-महाभारत कबीर के मन-मैदान में लड़े-खेले जाते हैं। अकेला ही समुद्र मंथन करता है। न दूसरी तरफ रस्सी खींचने के लिए शक्तिशाली दनुज और न कुंठाओं के मंद्राचल को पाताल में धँसने से रोकने वाले किसी कच्छपावतार की कठोर पीठ। वहाँ सहायता के लिए न कोई हनुमान है और न ही कोई गीता का उपदेश देने वाला योगीराज कृष्ण। वहाँ दु:शासन द्वारा चीर हरण के समय सारी सभा मौन रहती है। कोई चीर बढ़ाने नहीं आता। दिन में कबीर खुद ही अपने तन की तकली पर सूत कातता है, ताने-बाने रचता है और अपनी झीनी झीनी चदरिया बुनता है। और रात में जब दुनिया सोती है तो वह जागता है, सोच, चिंता के चक्र में फँसकर रोता है।

सुखिया सब संसार है खावे और सोवे
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।

न रात को नींद, न दिन को चैन। लेकिन कबीर कुछ नहीं बोलता।

लोग पूछते हैं तो भी न कोई बड़ा दावा, न किसी मसीही अंदाज में वेद वाक्य। केवल इतना भर कहता है–

पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमड़ेंगे उस ठाँइ
अजहूँ बेड़ा सँमद मैं बोलि बिगूचैं काँइ

और इसकी ऐसी ही कबीरी व्याख्या 'बागे अनहद तूर' में श्रीकांत उपाध्याय ऐसे करते हैं–

महानुभावो! अभी हमसे कुछ न पूछा जाए। हम कदापि नहीं बोलेंगे। कोई वक्तव्य नहीं।

अभी हमारा अभियान चल रहा है। वह अपने अंतिम चरण में है। गंतव्य दिख रहा है। फिर भी हम गंतव्य से दूर हैं। जब तक हम अपने गंतव्य पर पहुँच नहीं जाते, एक शब्द भी बोलना अनागत का अपमान करना है। अभी भविष्यत ने बोलने की आज्ञा नहीं दी है।

लट्ठों से बना हमारा बेड़ा अभी भी समुद्र के अनंत में है। जब हमारा बेड़ा गंतव्य पर पहुँच जाएगा, तब हम सिद्ध होंगे। तब हम विजयपर्व मनाएंगे। तब हम कौमुदी महोत्सव मनाएंगे।

अभी बोलकर अपनी फ़जीहत क्यों कराएँ।

आत्मश्लाघा सुनते ही भूडोल आ जाता है। पंच महाभूतों की भृकुटि तन जाती है। रौद्र हो जाता है सागर। कोई तिमिंगिल पानी को काटता हुआ तिरछे निकलता है और बेड़े को उलटकर पानी में घुस जाता है। पवन प्रभंजन हो जाता है और बेड़े के परखच्चे उड़ा देता है।

अभिमान ने न जाने कितने अभियानों को गंतव्य से दस गज पहले ही ध्वस्त कर दिया है।

सिद्धि से पूर्व न कोई दुरभिसंधि, न कोई डंका।

अभियान के समांतर पराभव तेंदुए के समान, लुक-छिप कर चला करता है।

आत्मस्तुति सुचालक होती है, जिसकी चोट सर्वनाश कर देती है।

पाठक तुलना करें। कहाँ आज के बड़बोले बाबा और सेवक और कहाँ आत्मज्ञान का लक्ष्य सुनिश्चित होने से पहले ओंठ तक न खोलने वाला कबीर।

भारत के समस्त श्रेष्ठ का सार है कबीर। लेकिन हम कबीर को कितना समझते और कितना स्वीकार करते हैं !

–रमेश जोशी

विशेष आलेख

जीवन में साहित्य का स्थान

प्रेमचंद

साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटरियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को भी जी नहीं चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके लिए कानून हैं, जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकता। जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवनपर्यंत आनंद ही की खोज में लगा रहता है। किसी को वह रत्न द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे-पूरे परिवार में, किसी को लम्बे-चौड़े भवन में, किसी को ऐश्वर्य में, लकिन साहित्य का आनंद इस आनंद से ऊँचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुंदर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है, उसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोग के आनंद में ग्लानि छिपी होती है। उससे अरूचि भी हो सकती है, पश्चात्ताप भी हो सकता है– पर सुंदर से जो आनंद प्राप्त होता है, वह अखंड है, अमर है।

साहित्य के नौ रस कहे गए हैं। प्रश्न होगा, वीभत्स में भी कोई आनंद है? अगर ऐसा न होता, तो वह रसों में गिना ही क्यों जाता? हाँ, है। वीभत्स में सुंदर और सत्य मौजूद है। भारतेन्दु ने श्मशान का जो वर्णन किया है, वह कितना वीभत्स है! प्रेतों और पिशाचों का अधजले माँस के लोथड़े नोचना, हड्डियों को चटर-चटर चबाना, वीभत्स की पराकाष्ठा है– लेकिन वह वीभत्स होते हुए भी सुंदर है– क्योंकि उसकी सृष्टि पीछे आनेवाले स्वर्गीय दृश्य के आनंद को तीव्र करने के लिए ही हुई है। साहित्य तो हर एक रस में खोजता है–राजा के महल में, रंक की झोपड़ी के शिखर पर, गंदे नालों के अंदर, ऊषा की लाली में, सावन-भादों की अँधेरी रात में। और यह आश्चर्य की बात है कि रंक की झोपड़ी में जितनी आसानी से सुंदर मूर्तिमान दिखाई देता है, महलों में नहीं। महलों में तो वह खोजने से मुश्किलों से मिलता है।

जहाँ मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनंद है। आनंद कृत्रिमता और आडम्बर से कोसों भागता है। सत्य का कृत्रिम से क्या सम्बन्ध? अतएव हमारा विचार है कि साहित्य में केवल एक रस है और वह शृंगार है। कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की गणना साहित्य में की जा सकती है, जो शृंगारविहीन और अ-सुन्दर हो, जो रचना केवल वासना-प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावों को जागाना हो, जो केवल बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखे, वह साहित्य नहीं है। जासूसी उपन्यास अद्‌भुत होता है। लेकिन हम उसे साहित्य उसी वक्तफ कहेंगे, जब उसमें सुंदर का समावेश हो। खूनी का पता लगाने के लिए सतत उद्योग, नाना प्रकार के कष्टों का झेलना, न्याय-मर्यादा की रक्षा करना, ये भाव हैं, जो इस अद्‌भुत रस की रचना को सुंदर बना देते हैं।

सत्य से आत्मा का सम्बन्ध तीन प्रकार का है। एक जिज्ञासा का सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजन का सम्बन्ध है और तीसरा आनंद का। जिज्ञासा का सम्बन्ध दर्शन का विषय है, प्रयोजन का सम्बन्ध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल आनंद का सम्बन्ध है। सत्य जहाँ आनंद का स्त्रोत बन जाता है, वहीं वह साहित्य हो जाता है। जिज्ञासा का सम्बन्ध विचार से है, प्रयोजन का सम्बन्ध स्वार्थ-बुद्धि से। आनंद का सम्बन्ध मनोभावों से है। साहित्य का विकास मनोभावों द्वारा ही होता है। एक ही दृश्य या घटना या कांड को हम तीनों ही भिन्न-भिन्न नजरों से देख सकते हैं। हिम से ढँके हुए पर्वत पर ऊषा का दृश्य दार्शनिक के गहरे विचार की वस्तु है, वैज्ञानिक के लिए अनुसंधान की और साहित्यिक के लिए विह्वलता की! विह्वलता एक प्रकार का आत्म-समर्पण है। यहाँ हम पृथकता का अनुभव नहीं करते। यहाँ ऊँचे-नीच, भले-बुरे का भेद नहीं रह जाता। श्रीरामचन्द्र शबरी के जूठे बेर क्यों प्रेम से खाते हैं, कृष्ण भगवान् विदुर के शाक को क्यों नाना व्यंजनों से रुचिकर समझते हैं इसलिए कि उन्होंने इस पार्थक्य को मिटा दिया है। उनकी आत्मा विशाल है। उसमें समस्त जगत् के लिए स्थान है। आत्मा आत्मा से मिल गई है। जिसकी आत्मा जितनी ही विशाल है वह उतना ही महापुरुष है। यहाँ तक कि ऐसे महान् पुरुष भी हो गए हैं, जो जड़ जगत् से भी अपनी आत्मा का मेल कर सके हैं।

आइए देखें, जीवन क्या है? जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नहीं है। यह तो पशुओं का जीवन है। मानव-जीवन में भी यह सब प्रवृत्तियाँ होती हैं, क्योंकि वह भी तो पशु है। पर इसके उपरांत कुछ और भी होता है। उसमें कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती हैं, जो प्रकृति के साथ हमारे मेल में बाधक होती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो इस मेल में सहायक बन जाती हैं। जिन प्रवृत्तियों में प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य बढ़ता है, वह वांछनीय होती हैं जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है, वे दूषित हैं। अहंकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि हम इनको बेरोकटोक चलने दें, तो निस्संदेह वह हमें नाश और पतन की ओर ले जायेंगी। इसलिए हमें उनकी लगाम रोकनी पड़ती है, उन पर संयम रखना पड़ता है, जिनसे वे अपनी सीमा से बाहर न जा सकें। हम उन पर जितना कठोर संयम रख सकते हैं, उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो जाता है।

किंतु नटखट लड़कों से डाँटकर कहना, तुम बड़े बदमाश हो, हम तुम्हारे कान पकड़कर उखाड़ लेंगे, अक्सर व्यर्थ ही होता है, बल्कि उस प्रवृत्ति को और हठ की और ले जाकर पुष्ट कर देता है। ज़रूरत यह होती है कि बालक में जो सद्वृत्तियाँ हैं, उन्हें उत्तेजित किया जाय कि दूषित वृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से शांत हो जाएँ। इसी प्रकार मनुष्य को भी आत्मविकास के लिए संयम की आवश्यकता होती हैं। साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है। सत्य को रसों द्वारा हम जितनी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं ज्ञान और विवेक द्वारा नहीं कर सकते, उसी भाँति जैसे दुलार-चुमकारकर बच्चों को जितनी सफलता से वश में किया जा सकता है, डाँट-फटकार से सम्भव नहीं। कौन नहीं जानता कि प्रेम से कठोर से कठोर प्रकृति को नरम किया जा सकता है। साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है। यही कारण है कि हम उपनिषदों और अन्य धर्म-ग्रंथों को साहित्य की सहायता लेते देखते हैं! हमारे धर्माचार्यों ने देखा कि मनुष्य पर सबसे अधिक प्रभाव मानव-जीवन की वे दुख-सुख के वर्णन से ही हो सकता है और उन्होंने मानव-जीवन की वे कथाएँ रचीं, जो आज भी हमारे आनंद की वस्तु हैं। बौद्धों की जातक-कथाएँ, तोरेह, कुरान, इंजील ये सभी मानवी कथाओं के संग्रह-मात्र हैं। उन्हीं कथाओं पर हमारे बड़े-बड़े धर्म स्थिर हैं। वही कथाएँ धर्मों की आत्मा हैं। उन कथाओं को निकाल दीजिए, तो उस धर्म का अस्तित्व मिट जायेगा। क्या उन धर्म-प्रवर्तकों ने अकारण ही मानवी जीवन की कथाओं का आश्रय लिया? नहीं, उन्होंने देखा कि हृदय द्वारा ही जनता की आत्मा तक अपना संदेश पहुँचाया जा सकता है। वे स्वयं विशाल हृदय के मनुष्य थे। उन्होंने मानव-जीवन से अपनी आत्मा का मेल कर लिया था। समस्त मानव-जाति से उनके जीवन का सामंजस्य था, फिर वे मानव-चरित्र की उपेक्षा कैसे करते?

आदिकाल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख-दुःख हँसने-रोने का मर्म समझ सकते हैं, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है। विद्यार्थी को विद्यार्थी जीवन से, कृषक को कृषक जीवन से जितनी रुचि है, उतनी अन्य जातियों से नहीं, लेकिन साहित्य जगत् में प्रवेश पाते ही यह भेद, यह पार्थक्य मिट जाता है। हमारी मानवता जैसे विशाल और विराट होकर समस्त मानव जाति पर अधिकाार पा जाती है। मानव जाति ही नहीं, चर और अचर, जड़ और चेतन सभी उसके अधिकार में आ जाते हैं। उसे मानो विश्व की आत्मा पर साम्राज्य प्राप्त हो जाता है। श्री रामचन्द्र राजा थे, पर आज रंक भी उनके दुःख से उतना ही प्रभावित होता है, जितना कोई राजा हो सकता है।

साहित्य वह जादू की लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है। मानव हृदय का जगत्, इस प्रत्यक्ष जगत् जैसा नहीं है। हम मनुष्य होने के कारण मानव जगत् के प्राणियों में अपने को अधिक जाते हैं, उसके सुख-दुख, हर्ष और विषाद से ज्यादा विचलित होते हैं। हम अपने निकटतम बंधु-बांधवों से अपने को इतना निकट नहीं पाते, इसलिए कि हम उसके एक-एक विचार, एक-एक उद्‌गार को जानते हैं। उसका मन हमारी नजरों के सामने आईने की तरह खुला हुआ है। जीवन में ऐसे प्राणी हमें कहाँ मिलते हैं, जिनके अंतःकरण में हम इतनी स्वाधीनता से विचर सकें? सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है कि उसके भावों में व्यापकता हो, उसने विश्व की आत्मा से ऐसी 'हारमनी' प्राप्त कर ली हो कि उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपने ही भाव मालूम हों।

साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। 'टॉम काका की कुटिया' गुलामी की प्रथा से व्यथित हृदय की रचना है, पर आज उस प्रथा के उठ जाने पर भी उसमें वह व्यापकता है कि हम लोग उसे पढ़कर मुग्ध हो जाते हैं। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। वह सदा नया बना रहता है। दर्शन और विज्ञान समय की गति के अनुसार बदलते हैं पर साहित्य तो हृदय की वस्तु है और मानव-हृदय में तब्दीलियाँ नहीं होतीं। हर्ष और विस्मय, क्रोध और द्वेष, आशा और भय, आज भी हमारे मन पर उसी तरह अधिकृत हैं, जैसे आदिकवि वाल्मीकि के समय में थे और कदाचित् अनंत तक रहेंगे। रामायण के समय का समय अब नहीं है, महाभारत का समय भी अतीत हो गया, पर ये ग्रंथ अभी तक नए हैं। साहित्य ही सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहास में नही हो सकता। घटनाओं की तालिका इतिहास नहीं है और न राजाओं की लड़ाइयाँ ही इतिहास है। इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है और जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है, क्योंकि साहित्य अपने देशकाल का प्रतिबिम्ब होता है।

जीवन में साहित्य की उपयोगिता के विषय में कभी-कभी संदेह किया जाता है। कहा जाता है जो स्वभाव से अच्छे हैं, वह अच्छे ही रहेंगे, चाहे कुछ भी पढ़ें। जो स्वभाव से बुरे हैं, वह बुरे ही रहेंगे, चाहे कुछ भी पढ़ें। इस कथन में सत्य की मात्रा बहुत कम है। इसे सत्य मान लेना मानव-चरित्र को बदल देना होगा। जो सुंदर है, उसकी ओर मनुष्य का स्वाभाविक आकर्षण होता है। हम कितने ही पतित हो जाएँ पर असुंदर की ओर हमारा आकर्षण नहीं हो सकता। हम कर्म चाहे कितने ही बुरे करें, पर यह असम्भव है कि करुणा और दया और प्रेम और भक्ति का हमारे दिलों पर असर न हों। नादिरशाह से ज्यादा निर्दयी मनुष्य और कौन हो सकता है हमारा आशय दिल्ली में कत्लेआम करानेवाले नादिशाह से है। अगर दिल्ली का कत्लेआम सत्य घटना है, तो नादिरशाह के निर्दय होने में कोई संदेह नहीं रहता। उस समय आपको मालूम है, किस बात से प्रभावित होकर उसने कत्लेआम बंद करने का हुक्म दिया था? दिल्ली के बादशाह का वज़ीर एक रसिक मनुष्य था। जब उसने देखा कि नादिरशाह का क्रोध किसी तरह नहीं शांत होता और दिल्ली वालों के खून की नदी बहती चली जाती है, यहाँ तक कि खुद नादिरशाह के मुँहलगे अफसर भी उसके सामने आने का साहस नहीं करते, तो वह हथेलियों पर जान रखकर नादिरशाह के पास पहुँचा और यह शे'र पढ़ा–

'कसे न माँद कि दीगर ब तेग़े नाज कुशी।
मगर कि जिंदा कुनी खल्क रा व बाज कुशी।'

इसका अर्थ यह हुआ कि तेरे प्रेम की तलवार ने अब किसी को जिंदा न छोड़ा अब तो तेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि तू मुर्दो फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू करे। यह फारसी के एक प्रसिद्ध कवि का श्रृंगार-विषयक शेर है पर इसे सुनकर कातिल के दिल में मनुष्य जाग उठा। इस शेर ने उसके हृदय के कोमल भाग को स्पर्श कर दिया और कत्लेआम तुरन्त बंद कर दिया गया।

नेपोलियन के जीवन की वह घटना भी प्रसिद्ध है, जब उसने एक अंग्रेज मल्लाह को झाऊँ की नाव पर कैले का समुद्र पार करते देखा। जब फ्रांसीसी अपराधी मल्लाह को पकड़कर नेपोलियन के सामने लाये और उसने पूछा, तू इस भंगुर नौका पर क्यों समुद्र पार कर रहा था, तो अपराधी ने कहा, इसलिए कि मेरी वृद्धा माता घर पर अकेली है, मैं उसे एक बार देखना चाहता था। नेपोलियन की आँखों में आँसू छलछला आये। मनुष्य का कोमल भाग स्पंदित हो उठा। उसने उस सैनिक को फ्रांसीसी नौका पर इंग्लैंड भेज दिया।

मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच या और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है, उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके। हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है। हम जो कुछ हैं, साहित्य के ही बनाए हैं। विश्व की आत्मा के अंतर्गत भी राष्ट्र या देश की एक आत्मा होती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि है – साहित्य।

योरप का साहित्य उठा लीजिए। आप वहाँ संघर्ष पाएँगे। कहीं खूनी कांडों का प्रदर्शन है, कहीं जासूसी कमाल का। जैसे सारी संस्कृति उन्मत्त होकर मरु में जल खोज रही है। उस साहित्य का परिणाम यही है कि वैयक्तिक स्वार्थपरायणता दिन-दिन बढ़ती जाती है, अर्थ-लोलुपता की कहीं सीमा नहीं, नित्य दंगे, नित्य लड़ाइयाँ। प्रत्येक वस्तु स्वार्थ के काँटे पर तौली जा रही है। यहाँ तक कि अब किसी यूरोपियन महात्मा का उपदेश सुनकर भी संदेह होता है कि इसके परदे में स्वार्थ न हो।

साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा है। जब आदर्श ही भ्रष्ट हो गया, तो समाज के पतन में बहुत दिन नहीं लगते। नई सभ्यता का जीवन 150 साल से अधिक नहीं, पर अभी से संसार उससे तंग आ गया है, पर इसके बदले में उसे कोई ऐसी वस्तु नहीं मिल रही है, जिसे वहाँ स्थापित कर सके। उसकी दशा उस मनुष्य की-सी है, जो यह तो समझ रहा है कि वह जिस रास्ते पर जा रहे है, वह ठीक रास्ता नहीं है, पर वह इतनी दूर जा चुका है कि अब लौटने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। वह आगे ही जायेगा,चाहे उधर कोई समुद्र ही क्यों न लहरें मार रहा हो। उसमें नैराश्य का हिंसक बल है, आशा की उदार शक्ति नहीं।

भारतीय साहित्य का आदर्श उसका त्याग और उत्सर्ग है। योरप का कोई व्यक्ति लखपति होकर, जायदाद खरीदकर, कम्पनियों में हिस्से लेकर और ऊँचे सोसाइटी में मिलकर अपने को कृतकार्य समझता है। भारत अपने को उस समय कृतकार्य समझता है, जब वह इस माया-बंधन से मुक्त हो जाता है, जब उसमें भोग और अधिकार का मोह नहीं रहता। किसी राष्ट्र की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते हैं। व्यास और वाल्मीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की, वह आज भी भारत का सिर ऊँचा किए हुए हैं। राम अगर वाल्मीकि के साँचे में न ढलते, तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचे में ढलकर सीता हुई। यह सत्य है कि हम सब ऐसे चरित्रों का निर्माण नहीं कर सकते, पर धन्वंतरि के एक होने पर भी संसार में वैद्यों की आवश्यकता है और रहेगी।

ऐसा महान् दायित्व जिस पर है, उसके निर्माताओं का पद कुछ कम जिम्मेदारी का नहीं है। कलम हाथ में लेते ही हमारे सिर पर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ जाती है। हम साधारणतः युवावस्था में हमारी निगाह पहले विध्वंस करने की ओर उठ जाती है। हम सुधार करने की धुन में अंधाधुंध शर चलाना शुरू करते हैं। खुदाई फौजदार बन जाते हैं। तुरंत आँखें काले धब्बों की ओर पहुँच जाती हैं। यथार्थवाद के प्रवाह में बहने लगते हैं बुराइयों के नग्न चित्र खींचने में कला की कृतकार्यता समझते हैं। यह सत्य है कि कोई मकान गिराकर ही उसकी जगह नया मकान बनाया जाता हैं पुराने ढकोसलों और बंधनों को तोड़ने की जरूरत है, पर इसे साहित्य नहीं कह सकते। साहित्य तो वही है, जो साहित्य की मर्यादाओं का पालन करे।

हम अक्सर साहित्य का मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देते हैं। शायद हम समझते हैं कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा में लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्य का अंग है, पर स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है। वह मानव-चरित्र की कालिमाएँ नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है। मकान गिरानेवाला इंजीनियर नहीं कहलाता। इंजीनियर तो निर्माण ही करता है। हममें जो युवक साहित्य को अपने जीवन का ध्येय बनाना चाहते हैं, उन्हें बहुत आत्मसंयम की आवश्यकता है, क्योंकि वह अपने को एक महान् पद के लिए तैयार कर रहे हैं, जो अदालतों में बहस करने या कुरसी पर बैठकर मुक़दमे का फैसला करने से कहीं ऊँचा है। उसके के लिए केवल डिग्रियाँ और ऊँची शिक्षा काफी नहीं। चित्त की साधना, संयम, सौंदर्य-तत्व का ज्ञान, इसकी कहीं ज्यादा ज़रूरत है।

साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए। भावों का परिमार्जन भी उतना ही वांछनीय है। जब तक हमारे साहित्य-सेवी इस आदर्श तक न पहुँचेंगे, तब तक हमारे साहित्य से मंगल की आशा नहीं की जा सकती। अमर साहित्य के निर्माता विलासी प्रवृत्ति के मनुष्य नहीं थे। वाल्मीकि और व्यास दोनों तपस्वी थे। सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक न थे। कबीर भी तपस्वी ही थे।

हमारा साहित्य अगर आज उन्नति नहीं करता, तो इसका कारण यही है कि हमने साहित्य-रचना के लिए कोई तैयारी नहीं की। दो-चार नुस्ख़े याद करके हकीम बन बैठे। साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है और हमारी ईश्वर से यही याचना है कि हममें सच्चे साहित्य-सेवी उत्पन्न हों, सच्चे तपस्वी, सच्चे आत्मज्ञानी। •

गुलामी संसाधनों की कमी से नहीं होती, गुलामी लालच और भय से आती है। वह नैतिकता की कमी से आती है। –महात्मा गाँधी

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास'

कन्नड़ साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास' को उनके उपन्यास 'चिक्क वीरराजेन्द्र' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ का 1983 का ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पित किया गया। वे 'कन्नड़ कहानी के प्रवर्तक' और 'कन्नड़ की संपत्ति' के रूप में ख्याति प्राप्त कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, अनुवादक और आलोचक थे।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार की आस्था किसी संकीर्ण धार्मिक मताग्रह से नहीं जुड़ी थी। उनकी आस्था उन्हें नैतिक जगह की सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए उत्प्रेरित करती थी, जिसका हमारी संस्कृति की मनीषा से पूर्व सामंजस्य है। यह आस्था जीवन मूल्य एवं अर्थवत्ता की ओर गतिशील रहती है और उनका लेखन मूलभूत मानव मूल्यों का एक संवाहक बन जाता है। यही कारण है कि मास्ति वेंकटेश अय्यंगार सोल्लास और कुशलता से ऐसे चरित्रों की रचना करते हैं, जिनमें मनुष्य की अंतर्दृष्टि किसी भी आवेश द्वारा धूमिल नहीं पड़ती। उनका मनुष्य इंद्रिय-विजय में देववत है, परंतु फिर भी अत्यंत मानवीय एवं करुणामय है। उनकी मूल रुचि मानव प्रकृति की पवित्रता एवं शुभता में है। परंतु वे यह कभी नहीं भूलते कि मनुष्य दिव्य शक्ति के उपकरण मात्र हैं। हमारे सांस्कृतिक दाय से प्रेरित गहन मानववाद और मानव में अटूट आस्था उनके साहित्य की विशिष्ट अंतर्धारा है और उनकी दृष्टि में साहित्य का आधारभूत प्रयोजन समाज और व्यक्ति दोनों को मंगल प्रदान करना है। मानव के प्रति ऐसी आस्था रखने वाला यह सर्जक साहित्य के प्रति कितनी उत्कृष्ट और उदात्त भावना रखता है–"मानव के उत्थान के लिए साहित्य बड़ा सशक्त माध्यम है। वह मनुष्य को पशु से देवता बनाता है। मानवोन्नति के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्ग बताये गये हैं। उनके अलावा चौथा साहित्य मार्ग भी है। साहित्य का मार्ग सर्वोत्तम मार्ग है।" अत: उनका साहित्य मानव-मूल्यों के प्रतिष्ठापन की उनकी अंत:प्रेरणा का मात्र एक संवाहक है।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार ने साहित्य की अनेक विधाओं में रचनाएँ कर साहित्य की श्रीवृद्धि में विशेष योगदान दिया है। उनके दो विशालकाय ऐतिहासिक उपन्यास-'चन्नबसव नायक' और 'चिक्क वीरराजेन्द्र' प्रसिद्ध हैं,उन्होंने इनमें एक राज्य के पतन एवं विघटन का अध्ययन किया और स्वयं स्त्री-पुरुषों में भी उनके कारण खोजे। जहाँ 'चन्नबसव नायक' में बिदूर के नायक वंश की पराजय और पतन की गाथा है तो 'चिक्क वीरराजेन्द्र' में कुर्ग के अंतिम शासक चिक्क वीरराजेन्द्र के विनाश की कथा के साथ-साथ एक समाज की निरीहता की कहानी भी है। एक अनुत्तरदायी शासन किस प्रकार किसी समाज को बुरी तरह जकड़कर बेसहारा कर देता है, इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। समाज का अंतर्द्वंद्व, मानवीय कषाय की उथल-पुथल से विनाशकारी मोह की त्रासदी इस उपन्यास को विशिष्टता प्रदान करती है।

जीवन परिचय : मास्ति वेंकटेश अय्यंगार का जन्म 6 जून, 1891 को कोलार ज़िला के मास्ति गाँव, मैसूर, कर्नाटक में मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। उनका बचपन बहुत ही कठिन परिस्थितियों में बीता। उन्होंने 1914 में मद्रास विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में मास्टर डिग्री स्वर्ण पदक के साथ प्राप्त की। मैसूर प्रशासन सेवा परीक्षा में उन्होंने पहली पदवी हासिल की। भारतीय सिविल सेवा परीक्षा उतीर्ण कर सहायक आयुक्त के पद से जीविका शुरु कर वे आबकारी आयुक्त से जिला आयुक्त के स्तर तक पहुंचे। मास्तिजी का विवाह पंकजम्मा से हुआ और उनकी 6 बेटियाँ हुईं। कॉलेज में अध्ययन के दौरान से ही मास्ति वेंकटेश अय्यंगार कविता, कहानी लिखने लगे थे समय के साथ उनके लेखन में गंभीरता आती गई। मास्ति वेंकटेश अय्यंगार अपने गुरु बी.एम. श्री से बहुत प्रभावित थे। जब श्रीजी ने कन्नड साहित्य के पुनरुत्थान करने के लिए बुलाया तो मास्ति जी पूरी तरह से उसमें शामिल हो गये और बाद में उन्होंने इसे नवोदय का नाम दिया गया, जिसका मतलब 'पुनर्जन्म' है। श्रीनिवास उपनाम

डॉ. दीपक पाण्डेय
सहायक निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-66
ईमेल –dkp410@gmail.com

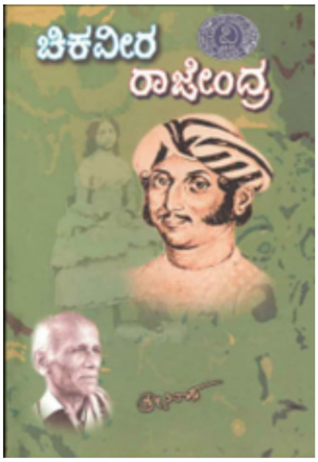

से इनका पहला कहानी संग्रह 'रंगन मदुवे' 1910 में प्रकाशित हुआ और यह प्रकाशन क्रम जीवन के अंतिम पड़ाव तक चलता रहा। वे सामाजिक, दार्शनिक और सौंदर्यात्मक विषयों पर साहित्य सर्जन करते रहे। 6 जून, 1986 को वे परमसत्ता में विलीन हो गए।

रचनाएँ– लेखक ने लगभग 137 पुस्तकों की रचना की जिनमें 120 कन्नड़ में हैं।

कन्नड़ में उपन्यास-कहानी : चेन्नबसवनायक, चिक्क वीरराजेन्द्र, सुब्बण्णा, सण्ण कथेगलु (15 भागों में)।

काव्य-संग्रह : बिन्नह, अरुण, तवारे, वेलेवु, मलार, मक्कलु, सुनीता, नवरात्रि (पाँच भागों में), संक्रान्ति, मानवी, श्रीरामपट्टाभिषेक।

नाटक : शान्ता, सावित्री, उषा, तालीकोटे, मंजुला, शिव छत्रपति, यशोधरा, तिरूपाणि, काकनकोटे, मास्ती, अनारकली, पुरन्दरदास, कालिदास।

व्याख्यान एवं समीक्षा : कर्नाटकद जनतेय संस्कृति, आदिकवि वाल्मीकि, कर्नाटकद जनपद साहित्य, विचार, विमर्श (चार भागों में), उत्तरकाण्ड विचार (पाँच भागों में)।

अनुवाद : चित्रांगदा, हैमलेट, चन्द्र मारुत, लियर महाराज, श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्, द्वादश-रात्रि, शेक्सपियर दृश्यगलु (तीन भागों में), संक्षिप्त-रामायण।

अंग्रेज़ी : सेइंग्स ऑफ़ बासवन्ना, पापुलर कल्चर इन कर्नाटका, द पोएट्री ऑफ़ वाल्मीकि, सुब्बन्ना, द महाभारत, राजाजी (दो भाग), ऐसेज, ऐड्रेसेज इटसेट्रा, शॉर्ट स्टोरीज (1-5 भाग)

पुरस्कार : 1. मैसूर के महाराजा नलवाडी कृष्णराजा वडियर द्वारा राजसेवासकता पदवी से सम्मानित किया

2. मैसूर एवं मद्रास विश्वविद्यालयों ने डॉक्टरेट से सम्मानित किया

3. कन्नड साहित्य परिषद के उपाध्यक्ष

4. साहित्य अकेदमी की फैलोशिप

5. 1983 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

वक्तव्य

जब मैं कॉलिज का एक छात्र ही था मैं कहानियाँ लिखना प्रारम्भ कर चुका था। उस समय मेरी सम्पूर्ण कामना अपने लोगों के लिए वैसी मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत करने की थी, जैसी कि मैं स्टेंडर्ड मैगज़ीन में देखा करता था। 1921 में, बेलूर के चन्नकेशव मन्दिर में मुझे एक दैवी शक्ति की अनुभूति हुई और देश में साहित्य और कला के क्षेत्र में रचनात्मक प्रतिभा के नितान्त अभाव पर मुझे खिन्नता का अनुभव हुआ। हमारी दुर्दशा पर मेरी आत्मा पीड़ा से चीत्कार कर उठी, यह प्रतीत होता कि इस अनुभव ने मेरे भीतर एक ऐसी क्षमता जाग्रत की जो कि तब तक सुप्त अवस्था में थी। मैं प्रकृति में नवीन सौंदर्य देखने लगा और अपनी दृष्टि में आनन्द के साथ यह अनुभव किया कि जो सौंदर्य में देख रहा हूँ उसके पीछे तो एक महती उपस्थिति है। और मुझे प्रेरणा हुई कि मैं इस आनन्द और दृष्टिबोध को वाणी दूँ। अनजाने में ही मैं जीवन की एक नयी अवस्था में पदार्पण कर चुका था और मुझे एक काम मिल चुका था। सरकारी कर्मचारी के रूप में अपने कार्य के दौरान देश-भर में भ्रमण करने पर मैंने देखा कि हमारे जन-समुदाय में संस्कृति की जड़ें बहुत गहरी हैं, जो उसके दैनिक जीवन को प्रभावित करके एक नया सौंदर्य प्रदान करती हैं। मैं जल्दी समझ गया कि यह संस्कृति ही हमारी राष्ट्रीय संस्कृति है; यह वह उत्तराधिकार था जिसने भारत को नैराश्यपूर्ण स्थितियों में भी शेष विश्व के अग्रज बंधु के रूप में प्रतिष्ठित किया था। हमारा कार्य वैदिक युग की आस्थाओं, उपनिषद् काल के महान दर्शन तथा रामायण एवं महाभारत काल के उच्च आदर्शों तक लौटना था। यदि हमने ऐसा कर लिया तब हमारा राष्ट्र सही अर्थों में विश्व के अन्य राष्ट्रों का अग्रज बंधु तथा जाति के जीवन में यक्षप्रश्न प्रसंग का युधिष्ठिर हो जाएगा। यह कोई सरल कार्य नहीं था लेकिन एकमात्र किया जाने योग्य कार्य था। और हमारी पीढ़ी को यह कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

इस कार्य में पहला कदम कौन-सा था? प्राचीन सरलता एवं सौंदर्य में निष्ठा की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय जीवन की संस्थाओं की पुनर्रचना, हमारे उत्तराधिकार में सतही दृष्टिकोण में अनुचित दिखायी देने वाली, किन्तु मूल्यवान, गहरी अर्थों वाली मान्यताओं में पुनर्व्यवस्था करना मेरे अनुभवों ने मेरे द्वारा रचित गीति रचनाओं के माध्यम से रूप धारण किया। मेरी कहानियों तथा उपन्यासों में, हमारे जनसामान्य के सौंदर्य संबंधी मेरे विचारों ने कर्नाटक की लोकप्रिय संस्कृति के संबंध में एक धारणा का रूप लिया।

भारतीय साहित्य, वेदों एवं उपनिषदों में अपने प्रारंभ के साथ एक वाल्मीकि, व्यास की महान कृतियों और कालिदास जैसे श्रेष्ठ कवि और उस पर परंपरा के साथ, जो उनके साथ विकसित हुई, साहित्य के इस कार्य को पूरा करने की अत्युत्तम स्थिति में है। हमारी परंपरा पूँजीवाद एवं साम्यवाद के बीच किसी संघर्ष की आवश्यकता नहीं देखती। अर्जित करने की वृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे एक समाज वह सब उत्पादित करने में सक्षम होता है जो कि वह पैदा कर सकता है। ज़रूरतमंद साथी की सहायता करने की वृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इससे उत्पादन की हुई सामग्री इस समाज को, जिसका कि अर्जन करने वाला एक सदस्य होता है, उपलब्ध हो जाती है।

भारत ने शताब्दियों तक धर्मों के बीच सहिष्णुता का उपदेश दिया है। मैं यह बात अन्य धर्मों की निन्दा के रूप में नहीं कर रहा हूँ, परन्तु यह एक वास्तविकता है कि हिन्दूवाद ही अकेला धर्म है जो अन्य धर्मावलम्बियों से कहता है, "अपने धर्म का पालन करो, इन उपदेशों का आचरण करो और एक अच्छे मनुष्य बनो, ईश्वर तुम्हें स्वीकार करेगा।" अपने जनसामान्य के शान्तिपूर्ण जीवन के लिए समग्र रूप से किसी अन्य देश की तुलना में हमें धर्म की आवश्यकता

अपेक्षाकृत अधिक है। इस धर्म एवं इसके दर्शन को रूपाकार देना हमारे साहित्य का कार्य है।

हमारे देश के विरुद्ध सब कुछ कहा जा चुकने के बावजूद, यह वास्तविकता अपनी जगह विद्यमान है कि हमारे देश के धर्म एवं संस्कृति ने हमारे इतिहास के घोर निराशापूर्ण दिनों में भी राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द घोष और महात्मा गाँधी जैसे महान विभूतियों को जन्म दिया। सचमुच ही वह धर्म, वह संस्कृति कितनी महान होगी जिसने ऐसे समय में ऐसे पुरुषों को जन्म दिया, जबकि देश को उसकी बड़ी जरूरत थी। हमारे लेखकों का यह कार्य है कि वे अपने क्रियाकलापों में सनातन धर्म एवं भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठताओं को पुनर्जीवित करने के लिए अपना श्रेष्ठतम योगदान दें तथा अपने देशवासियों को अनुभव करायें कि वे अपनी विरासत को शानदार ढंग से बनाये रखें तथा विश्व के राष्ट्रों को भाई-भाई के समान खड़ा होने का आह्वान करें एवं विश्व को मनुष्य मात्र और प्राणी-मात्र के लिए एक सुरक्षित तथा सुखद स्थान बनायें।

इस महान कार्य से शक्ति पाने के लिए आइए हम अपने आपसे बार-बार कहें, "मैं उसका क्या करूँगा जो मेरे लिए अमरता का साधन नहीं बन सकता।" आइए, हम एक साथ चलें, आइए हम आपस में बातचीत करें, विचारों में मैत्री पैदा करें और सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करें कि हमें बुराई से भलाई, अँधेरे से प्रकाश और मृत्यु से अमरता की ओर ले जाए।

****

(इस लेख के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार- संपादक बिशन टंडन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन पुस्तक को आधार बनाया गया है। संपादक एवं प्रकाशन संस्था के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।) ●

बधाई

दिल्ली की झुग्गी झोंपड़ियों से निकलकर लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से स्नातक होकर सेनफ्रांसिस्को में कार्यानुभव लेकर भारत लौटी 54 वर्षीय सफीना हुसैन ने राजस्थान के सुदूर गाँवों में 'एज्युकेट गर्ल्स' नामक संस्था के माध्यम से बालिका शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करने के लिए संस्था को इस वर्ष का रेमन मेगसेसे पुरस्कार घोषित किया गया है। उन्हें और उनकी टीम को हार्दिक बधाई।

श्रद्धांजलि

प्रसिद्ध समालोचक डॉ. निर्मला जैन का 15 अप्रैल 2025 को 93 वर्ष की आयु में निधन।

बुजुर्गों की अनेक वैश्विक मैराथन दौड़ जीत चुके 114 वर्षीय फ़ौजा सिंह का सड़क दुर्घटना में निधन

वातायन : एक कविता पाकिस्तान से

सुना है

ज़ेहरा निगाह

(पाकिस्तानी शायरा)

सुना है जंगलों का भी कोई दस्तूर होता है
सुना है शेर का जब पेट भर जाए तो
वो हमला नहीं करता
दरख़्तों की घनी छाँव में जा कर लेट जाता है

हवा के तेज़ झोंके जब दरख़्तों को हिलाते हैं
तो मैना अपने बच्चे छोड़ कर
कव्वे के अंडों को परों से थाम लेती है

सुना है घोंसले से कोई बच्चा गिर पड़े तो सारा जंगल जाग जाता है
सुना है जब किसी नद्दी के पानी में
बए के घोंसले का गंदुमी रंग लरज़ता है
तो नदी की रूपहली मछलियाँ उस को पड़ोसन मान लेती हैं

कभी तूफ़ान आ जाए, कोई पुल टूट जाए तो
किसी लकड़ी के तख़्ते पर
गिलहरी, साँप, बकरी और चीता साथ होते हैं

सुना है जंगलों का भी कोई दस्तूर होता है
ख़ुदावंदा!

जलील ओ मो'तबर!*
दाना ओ बीना! **
मुंसिफ़ ओ अकबर! ***
मिरे इस शहर में
अब जंगलों ही का कोई क़ानून नाफ़िज़ कर!

*प्रतिष्ठित और विश्वसनीय
**बुद्धिमान और दृष्टिसम्पन्न
*** न्याय करने वाला और महान ●

सरोकार

सोशल मीडिया और भाषाई प्रदूषण

रविकांत

(वरिष्ठ विचारक और शिक्षक)

पिछले 10-15 साल में सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर जो बदलाव हुए हैं, सोशल मीडिया की बड़ी भूमिका है। मोबाइल क्रांति ने एक नए सामाजिक परिवेश को जन्म दिया है। यह एक आभासी दुनिया है, लेकिन इसके जरिए होने वाले बदलाव केवल आभासी दुनिया तक महदूद नहीं हैं। इसने लोगों की रोजाना की जिंदगी में उथल-पुथल मचाई है। सूचना तंत्र पर सूचनाओं का अंबार है। ट्विटर, फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया के विभिन्न साधनों के जरिए दुनिया को देखने-समझने का एक नया नजरिया पैदा हुआ है। इसने हमारे सूचनात्मक ज्ञान को समृद्ध किया है लेकिन सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने सामाजिक संबंधों और जीवन मूल्यों को बड़े पैमाने पर दूषित किया है।

सोशल मीडिया ने सृजन और संवाद की संस्कृति को बुनियादी रूप से प्रभावित किया है। स्वभाव में बढ़ती अधीरता ने रचनाधर्मिता और छपने की हड़बड़ी में रचना की बनावट और संवेदना, दोनों पर प्रभाव डाला है। लेकिन सबसे ज्यादा प्रभाव संवादधर्मिता पर हुआ है। ज्यादातर संवाद, विवाद में तब्दील हो रहे हैं। चूंकि सोशल मीडिया पर कोई नैतिक अनुशासन नहीं है, इसलिए विरोध करने के लिए अपशब्दों की सारी सीमाएँ लांघी जा चुकी हैं। हिंसा प्रेरक शब्दों और गालियों के जरिए एक ऐसा भाषिक माहौल बना दिया गया है, जिस पर कोई प्रतिबंध या आत्मनियंत्रण नहीं है।

सोशल मीडिया पर बढ़ते हिंसक दृश्य

पर्यावरण के बिना मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस तरह मानव जीवन के लिए शुद्ध वातावरण जरूरी है, उसी तरह संवेद्य भाषिक वातावरण भी जरूरी है। मानव जीवन की पहली बड़ी क्रांति भाषा के रूप में हुई। ध्वनि और आंगिक संकेतों से निकलकर जब इंसान ने शब्दों को पैदा किया तो समाज व्यवस्थित हुआ। समाज, मानव जीवन जीने की व्यवस्था है। लेकिन आज भाषा की विकृति मानव जीवन के लिए बड़ी चुनौती बन गई है। संवादों में गालियाँ, हिंसा प्रेरक शब्द, अश्लीलता परोसने वाले शब्द, हमेशा से समाज के लिए अनैतिक और अग्राह्य समझे जाते थे। लेकिन आज फिल्मों से लेकर सोशल मीडिया पर बढ़ते हिंसक दृश्य; अश्लील और अनैतिक संबंध, मनोरंजन के नाम पर परोसे जा रहे हैं। इन शब्दों और बिंबों का मानव जीवन और मनोमस्तिष्क पर गहरा असर हो रहा है। खासकर, नई पीढ़ी के किशोरवय बच्चों में बढ़ते हिंसा और सेक्स के प्रति रुझान ने समाज को बड़े पैमाने पर दूषित किया है।

भाषा सिर्फ शब्दों और संवादों में नहीं होती, दृश्यों की भी एक भाषा होती है। पोर्नोग्राफी से लेकर वेब सीरीज जैसे फिल्मी दृश्यों ने समाज और नई पीढ़ी पर गहरा असर डाला है। इससे रिश्तों की मर्यादा बिखरी है। सामाजिक संबंध टूटे हैं। आधुनिक मूल्यों और तर्कों के आधार पर विकसित होने वाले संबंध आज स्वार्थ और अहंकार में डूब रहे हैं। इसलिए भाषा के इस बढ़ते असर को प्रदूषण की तरह देखा जा रहा है, जो पर्यावरण प्रदूषण की तरह ही मानव जीवन पर प्रतिकूल असर डाल रहा है।

दुनिया को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा

विश्व प्रसिद्ध भाषाविद जॉर्ज स्टेनर कहते हैं कि 'दुनिया जैसी है, वैसी उसे स्वीकार करने का मनुष्य का मुख्य उपकरण भाषा है।' दुनिया को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विश्वदृष्टि है। हिन्दी की विश्वदृष्टि बेहद उदार और समावेशी रही है। लंबे समय से हिन्दी इस देश की संपर्क भाषा है। लेकिन साहित्यिक भाषा बनने का इसका इतिहास डेढ़ शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। हिन्दी सिर्फ एक भाषा नहीं है बल्कि 46 बोलियों का परिवार है। हिन्दी स्थानीय बोलियों और देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों से समृद्ध होती रही है। पिछली एक सदी में हिन्दी की जितनी भाषिक समृद्धि हुई है, उसके मुकाबले 21वीं शताब्दी में हिन्दी की समृद्धि अधिक गत्यात्मक है। लेकिन भूमंडलीकरण की सांस्कृतिक प्रक्रिया और सूचनाओं के बेतरतीब बढ़ते प्रभाव के कारण हिन्दी का स्वभाव दूषित हुआ है। अपसंस्कृति को बढ़ावा मिला है।

भूमंडलीकरण के चलते भौतिकवाद और उपभोक्तावाद बढ़ा है। पश्चिमीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति दूषित हुई है। लेखक हो या सामाजिक कार्यकर्ता इस फेसबुकिया दौर में सबकी प्रदर्शनप्रियता बढ़ी है।

अपभाषा की संस्कृति बेलगाम हुई

काम को प्राथमिकता देने के बजाय आत्म प्रदर्शन और महत्वाकांक्षाओं का असर सीधे तौर पर दिखाई पड़ रहा है। हिन्दी की भाषिक संस्कृति पर भी इसका प्रभाव हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का बोलबाला बढ़ रहा है। सामाजिक प्रतिबद्धता के बजाय लेखक पुरस्कार पाने और फैन बनाने के लिए बेताब नजर आते हैं। रील्स की दौड़ में नेता, अभिनेता ही नहीं लेखक भी शरीक हो गए हैं। इसलिए उनकी रचनाशीलता प्रभावित हुई है। संवेदना, शिल्प और भाषा पर भी गहरा असर देखा गया है। लोकप्रिय साहित्य के नाम पर चलताऊ कथाएँ लिखी जा रही हैं। हास्य के नाम पर फूहड़ता, प्रेम के नाम पर यौनिकता और संघर्ष के नाम पर गैंगवॉर दिखाया जा रहा है। इससे

अपभाषा की संस्कृति बेलगाम हुई है। रही सही कसर बॉलीवुड की फिल्मों, विज्ञापनों और रील्स के जरिए परोसी जा रही अश्लीलता ने पूरी कर दी है।

भारतीय समाज मूलतः वर्णवादी और पितृसत्तात्मक रहा है। इसीलिए हिंदू समाज में स्त्रियाँ और दलित सदियों से पीड़ित हैं। जातिगत ऊंच-नीच वाली व्यवस्था में स्त्रियों और दलितों को शिक्षा, शस्त्र और संपत्ति से वंचित किया गया। शोषण और अन्याय की इस दमनकारी व्यवस्था में स्त्रियाँ और दलित शारीरिक और मानसिक दोनों तरह की हिंसा का शिकार होते रहे हैं। शारीरिक हिंसा से ज्यादा भयावह मानसिक हिंसा है। मानसिक हिंसा के जरिए इन वर्गों के मनोबल को तोड़ा गया। भाषिक स्तर पर होने वाली यह मानसिक हिंसा, समाज में प्रचलित गालियों और कहावतों में प्रकट होती है, जो मूलतः स्त्री और दलित विरोधी हैं। निरंतर इन वर्गों को अश्लील और अपमानजनक गालियों का सामना करना पड़ा। कुछ जातियों और स्त्रियों को अपशकुन तक करार दिया गया। इस व्यवस्था ने सदियों तक दलितों और स्त्रियों को गुलाम बनाकर रखा। नवजागरण के दौर में ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई, फातिमा शेख ने स्त्री और दलित विरोधी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को खारिज किया।

गैरबराबरी का समर्थन

स्वाधीनता आंदोलन में डॉ. आंबेडकर ने दलितों और स्त्रियों की सामाजिक आजादी के लिए संघर्ष किया। स्वतंत्रता के बाद असमानता और अन्याय को समाप्त घोषित करते हुए संविधान ने सबको बराबरी का दर्जा दिया। लेकिन चूंकि सामाजिक ढांचे में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ, इसलिए कानून के बावजूद, स्त्रियों और दलितों के प्रति वर्णवादी और पितृसत्तात्मक मानसिकता में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ। अलबत्ता, संविधान और आधुनिक मूल्यों के प्रभाव में शहरों के शिक्षित वर्ग में जरूर एक मानवीय चेतना पैदा हुई। शिक्षा और वैज्ञानिक सोच ने इस वर्ग में समतापरक मूल्यों और संस्कारों को पैदा किया। 70 और 80 के दशक में साहित्य के किरदार हों या फिल्म के संवाद उनकी भाषा समावेशी और सौहार्दपरक होती थी। इसका असर शहराती जीवन शैली में दिखाई देने लगा था। लेकिन 21वीं सदी में धर्मांधता, राजसत्ता और पूंजीवाद के गठजोड़ ने समाज में एक बार फिर से भाषिक कुसंस्कृति को बढ़ावा दिया है। एक वर्ग विशेष द्वारा खुलेआम मनुस्मृति का समर्थन किया जा रहा है। सांस्कृतिक वर्चस्व बनाए रखने के लिए मनुवादी और वर्णवादी मानसिकता के लोग दलितों और स्त्रियों के प्रति अभद्र, अश्लील और हिंसात्मक भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। यह प्रयोग समाज से लेकर संस्कृति के विभिन्न आयामों में दिखाई दे रहा है। फिल्मी संवाद और सोशल मीडिया पर बढ़ती अश्लीलता और गालियाँ, दरअसल सामाजिक विघटन और दूषित मानसिकता की परिचायक हैं।

इंटरनेट और मोबाइल क्रांति ने सूचनाओं के अपरिमित द्वार खोले हैं। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप और अन्य सोशल नेटवर्किंग साइट के जरिए लोगों का परस्पर जुड़ाव हुआ है। दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में बैठकर लोग आपस में चैटिंग कर रहे हैं। इससे एक नई तरह की सामाजिक क्रांति हुई है। टाइम्स नाउ वेबसाइट (30 अगस्त, 2019) की एक खबर के अनुसार अमेरिका की एमिनी ने भारत आकर अमृतसर के रहने वाले पवन से शादी की। कुछ महीने पहले ही दोनों की मुलाकात फेसबुक पर हुई थी। मैसेंजर पर दोनों में चैटिंग शुरू हुई। फिर दोनों में प्यार हुआ और इसके बाद शादी। सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की नई खिड़कियाँ भी खोली हैं। लोकतांत्रिक मुद्दों पर चलने वाली बहसों ने जानकारी का दायरा बढ़ाया है।

दुनिया भर में अनेक आंदोलन सोशल मीडिया के जरिए सफल हुए हैं। लेकिन सोशल मीडिया का यह सिर्फ एक पहलू है। आभासी दुनिया में फैला यह नेटवर्क बेहद अनसोशल भी है, जिसने रिश्तों को विद्रूप बनाकर परिवार और समाज को विघटित किया है।

सोशल मीडिया के एडिक्शन का मस्तिष्क पर हमला

पिछले एक-डेढ़ दशक में सोशल मीडिया ने पूरे समाज को अपनी चपेट में ले लिया है। कुछ आंदोलन, कुछ शादियाँ और कुछ बहसों को छोड़ दें तो सोशल मीडिया ने लोगों के मस्तिष्क पर तीव्र हमला किया है। मोबाइल के जरिए सोशल मीडिया, हमारे बेडरूम से लेकर किचेन और बाथरूम तक घुस गया है। सोशल मीडिया फेक न्यूज़ से लेकर मनोरंजक और उत्तेजक रील्स से भरा हुआ है। इसने समाज की हर पीढ़ी को प्रभावित किया है। लेकिन बच्चों और नौजवानों को इसका एडिक्ट बना दिया है। सोशल मीडिया के एडिक्शन ने लोगों के मस्तिष्क पर जो हमला किया है, उससे पढ़ाई-लिखाई ही नहीं प्रभावित हुई है बल्कि उनकी भाषा और संस्कार भी विकृत और दूषित हुए हैं। सोशल मीडिया पर भौंडे गाने, अश्लील नृत्य और सेक्स वीडियो की भरमार है। इससे किशोरों और नौजवानों में यौन कुंठा पैदा हुई है। महिलाओं के प्रति उनकी भाषा अश्लील और हिंसक हुई है।

मशहूर भाषाविद ओलिवर वेंडेल होम्स कहते हैं कि 'हर भाषा एक मंदिर है, जिसमें उन लोगों की आत्मा प्रतिष्ठित होती है जो उसे बोलते हैं।' सोशल मीडिया पर दिन-रात विचरने वाली आज की पीढ़ी की भाषा में भी अधीरता, झूठापन, हिंसा, अश्लीलता और भोगवाद झलकता है। दरअसल, हमारी पीढ़ी सोशल मीडिया से बेहद आक्रांत है। इसलिए उसके लिखने और बोलने में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। हिन्दी और स्थानीय भाषाओं के शब्दों की उपलब्धता के बावजूद अंग्रेजी भाषा के प्रयुक्त शब्दों पर सोशल मीडिया का सीधा असर दिखाई देता है। इससे हिन्दी भाषा दूषित ही नहीं संकीर्ण भी हुई है।

भाषाओं पर ख़तरा!

इस समय पूरी दुनिया पूंजीवाद के प्रभाव में दक्षिणपंथी विचार और व्यवस्था से संक्रमित है। अमेरिका और यूरोप जैसे पूंजीवादी साम्राज्य, एशिया और अफ्रीका के विकासशील और गरीब देशों पर सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं। दुनिया की सैकड़ों

भाषाएँ मरने की कगार पर हैं। एक भाषा के साथ पूरी संस्कृति मर जाती है। बहुलतावादी एशियाई संस्कृति को नष्ट करने के लिए साम्राज्यवादी देश एक भाषा, अंग्रेजी का आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं। संचार साधनों और सोशल मीडिया के जरिए इस काम को अंजाम दिया जा रहा है। यह एक छद्म युद्ध है। भाषा, इस युद्ध का एक हथियार है। बाजार और भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रकोप के कारण हमारी भाषा विकृत और संकीर्ण हुई है।

अपभाषा के चलते भाषा में आ रही संकीर्णता और संवेदना के ह्रास से मुक्ति के लिए प्राथमिक स्तर पर मूलगामी वैचारिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। साहित्य और कलाओं के प्रचार- प्रसार के ज़रिए सोशल मीडिया के हमले का मुक़ाबला किया जा सकता है। देशी भाषाओं की उन्नति और विकास के लिए सरकारी स्तर पर ठोस प्रयास किए जाने चाहिए। आत्म-अनुशासन के जरिए मोबाइल और अन्य साधनों के प्रयोग को सीमित करके पारिवारिक संबंधों को समय दिया जाना जरूरी है। सामान्य बैठकी और सभाओं के जरिए बहु-आयामी संवाद आयोजित किए जाने चाहिए। विशेषकर, बच्चों को सोशल नेटवर्किंग साइट से बचाने के उपाय पर विचार किया जाना अपरिहार्य है।

एक कविता :

वे नहीं मिलेंगे बिहार में

मणिमाला

(संवेदनशील, मानवतावादी रचनाकार एवं कार्यकर्ता)

जिन्हें तुम ढूँढ़ रहे हो न
वे नहीं मिलेंगे अपने घर-बार में
ठीक वैसे ही
जैसे रोजगार नहीं मिल पाया बिहार में

वे तुम्हें मिलेंगे ईंटों में, गारे में
मुंबई की ऊँची दीवारों में
वे मिलेंगे तुमको
कश्मीर की रेहड़ियों में, पटरियों में
गुजरात की फैक्टरियों में

बिन खोजे ही मिल जाएँगे
राजस्थान की तपती रेतों में
पंजाब के जुतते खेतों में

उन्हें कोई काम मिला ही नहीं बिहार में
भला वे कैसे रह लेते अपने घर-बार में

खोजों उन्हें दिल्ली की दौड़ रही ऑटो में
उजड़ी हुई झुग्गियों में
ढाली जा रही छतों में

सुनो,
सरकार से ज्यादा पैसा
वे बिहार के विकास में लगाते हैं
वे सब कुछ बिहार भेज देते हैं
जो दिल्ली और पंजाब में कमाते हैं

ये जो गाँवों में रौनक आई है
यह उन्हीं प्रवासियों की कमाई है

ढूँढ़ना है तो ढूँढ़ो उन्हें
उनकी माँओं के उदास चेहरों में
उनकी पत्नियों की पथराई आँखों में
उनकी बेटियों के बिखरे सपनों में

वे अपनों की खातिर जी रहे होते हैं
गैरों में
वे मिल ही नहीं पाते
ढूँढ़ने से भी अपनों में
वे आते हैं अपने घर

सुनो
कविता सबको समझ नहीं आती
उन्हें तो कतई नहीं
जिन्हें सत्ता की गुलामी आती है।

इस अंक के आवरण पृष्ठ

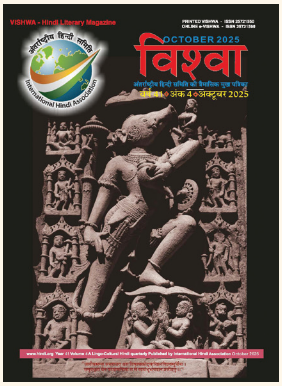

आवरण : 1. पृथ्वी को बाढ़ से बचाने वाले वराह भगवान की मूर्ति (मध्यप्रदेश) 2. ज्योति चरण– *सुमित्रानंदनपंत* 3. सीधी सी बात : कविता; *पाब्लो नरूदा* : अनुवाद- *मंगलेश डबराल* 4. भ्रम सिर्फ बारी का है : हिमालयांचाल में तबाही : *अमिता तिवारी*

पढ़ते-पढ़ाते

स्कूल या कॉलेज के परिसर में अलग-अलग भाषा, संप्रदाय, धर्म के विद्यार्थी और अध्यापक एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। यह मौक़ा उन्हें सिर्फ़ वहीं मिलता है। वे जब क़रीब आते हैं, एक दूसरे के बारे में परिवार और अपने समुदाय से मिले हुए प्रचलित पूर्वग्रह टूटते हैं। नई निकटताएँ बनती हैं, नई मित्रताओं का निर्माण होता है। एक प्रकार की नई सामुदायिकता का सृजन होता है। यही तो राष्ट्र का निर्माण है।

भारत की खोज : तीन

डॉ. निर्मला जैन

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

महाकाव्य, इतिहास, परंपरा और मिथक

प्राचीन भारत के दो महाकाव्यों– रामायण और महाभारत को रूप ग्रहण करने में शायद सदियाँ लगी होंगी और उनमें बाद में भी टुकड़े जोड़े जाते रहे। इन ग्रंथों में भारतीय-आर्यों के आरंभ के समय का वृत्तांत है। उनकी विजयों और उस समय के गृहयुद्धों का, जब वे अपना विस्तार कर रहे थे और अपनी स्थिति मज़बूत कर रहे थे। मुझे इनके अलावा कहीं भी किन्हीं ऐसी पुस्तकों की जानकारी नहीं है जिन्होंने आम जनता के मन पर लगातार इतना व्यापक प्रभाव डाला हो। इतने प्राचीन समय में रची जाने के बावजूद, भारतीयों के जीवन पर आज भी इनका जीवंत प्रभाव दिखाई पड़ता है। ये दोनों ग्रंथ भारतीय जीवन का अंग बन गए हैं।

इनमें हमें सांस्कृतिक विकास की विभिन्न श्रेणियों लिए ठेठ भारतीय ढंग से एक साथ सामग्री उपलब्ध है– अर्थात उच्चतम बुद्धिजीवी से लेकर साधारण अनपढ़ और अशिक्षित देहाती तक के लिए। इनके द्वारा हमें प्राचीन भारतीयों का वह रहस्य कुछ-कुछ समझ में आता है जिससे वे अनेक रूपों में विभाजित और जात-पाँत की ऊँच-नीच में बँटे समाज को एकजुट रखते थे। उनके मतभेदों को सुलझाते थे। उन्होंने लोगों में एकता का ऐसा नज़रिया पैदा करने का प्रयत्न किया जो हर तरह के भेद-भाव पर छा गया और बराबर बना रहा।

भारतीय पुराकथाएँ महाकाव्यों तक सीमित नहीं है। उनका इतिहास वैदिक काल तक जाता है और वे अनेक रूप-आकारों में संस्कृत साहित्य में प्रकट होती रही हैं। कवियों और नाटककारों ने इनका पूरा लाभ उठाते हुए अपनी कथाओं और सुंदर कल्पनाओं की रचना इनके आधार पर की है। अधिकांश पुराकथाएँ और प्रचलित कहानियाँ वीरगाथात्मक हैं। उनमें सत्य पर अड़े रहने और वचन के पालन का उपदेश दिया गया है, चाहे परिणाम कुछ भी हो। साथ ही इनमें जीवनपर्यंत और मरणोपरांत भी वफ़ादारी, साहस और लोक-हित के लिए सदाचार और बलिदान की शिक्षा दी गई है। कभी ये कहानियाँ पूर्णतः काल्पनिक होती हैं अन्यथा इनमें तथ्य और कल्पना आपस में इस प्रकार गुँथे रहते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। और यह सम्मिश्रण काल्पनिक इतिहास का रूप ग्रहण कर लेता है, जो हमें यह भले ही न बता सके कि निश्चित रूप से क्या घटित हुआ पर ऐसी बात की सूचना देता है जिसके घटित होने पर लोग विश्वास करते हैं। ये घटनाएँ वास्तविक हों या काल्पनिक, जीवन में इनकी स्थिति जीवंत तत्वों की हो जाती थी जो उन्हें रोज़मर्रा की जिंदगी की एकरसता और कुरूपता से खींचकर उच्चतर क्षेत्रों की ओर ले जाती हैं।

यूनानियों, चीनियों और अरबवासियों की तरह प्राचीन काल में भारतीय इतिहासकार नहीं थे। इसी कारण हमारे लिए आज तिथियाँ निश्चित करना या सही कालक्रम निर्धारित करना कठिन हो गया है। घटनाएँ आपस में गड्डमड्ड हो जाती हैं। बहुत धीमी गति से आधुनिक विद्वान धैर्यपूर्वक भारतीय इतिहास की भूलभुलैया के सूत्रों की खोज कर रहे हैं। कल्हण की राजतरंगिनी एकमात्र प्राचीन ग्रंथ है जिसे इतिहास माना जा सकता है। यह कश्मीर का इतिहास है जिसकी रचना ईसा की बारहवीं शताब्दी में की गई थी। बाकी के लिए हमें महाकाव्यों और अन्य ग्रंथों के कल्पित इतिहास, कुछ समकालीन अभिलेखों, शिलालेखों, कलाकृतियों और इमारतों के अवशेषों, सिक्कों और संस्कृत साहित्य के विशाल संग्रह से सहायता लेनी पड़ती है। इसके साथ ही विदेशी यात्रियों के सफ़रनामों से भी सहायता मिलती हैं, विशेष रूप से यूनानियों और चीनियों के और कुछ बाद में आने वाले अरबों के विवरणों से।

ऐतिहासिक बोध के इस अभाव का जनता पर प्रभाव नहीं पड़ा। यहाँ की जनता ने अतीत के विषय में अपनी दृष्टि का निर्माण उन परंपरागत वृत्तांतों और पौराणिक गाथाओं और कहानियों के आधार पर कर लिया जो उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में मिली थीं। इस

काल्पनिक इतिहास तथा तथ्यों और दंतकथाओं के इस मिश्रित रूप का व्यापक प्रचार हुआ। इनसे जनता को एक मज़बूत और टिकाऊ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली। लेकिन इतिहास की उपेक्षा के कारण हमारे दृष्टिकोण में धुँधलापन पैदा हुआ। जिंदगी से अलगाव पैदा हुआ और तथ्यों के बारे में दिमागी उलझन और सहज विश्वास करने की प्रवृत्ति पैदा हुई।

महाभारत

महाकाव्य के रूप में *रामायण* एक महान रचना है और लोग उससे बहुत प्रेम करते हैं; परंतु *महाभारत* का दर्जा विश्व की श्रेष्ठतम रचनाओं में है। यह कृति परंपरा और दंतकथाओं का तथा प्राचीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का विश्वकोश है। लगभग दस वर्ष बल्कि उससे भी कुछ अधिक समय से इस विषय के अधिकारी भारतीय विद्वान इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने की दृष्टि से विभिन्न उपलब्ध पाठों की जाँच और मिलान करने में व्यस्त हैं। उन्होंने कुछ अंश प्रकाशित करके जारी भी कर दिए हैं लेकिन यह कार्य अब भी अधूरा है।

शायद यही समय था जब भारत में विदेशी लोग आ रहे और वे अपने रीति-रिवाज अपने साथ ला रहे थे। इनमें बहुत से रिवाज आर्यों से मेल नहीं खाते थे। इसलिए विरोधी विचारों और रिवाजों का विचित्र घालमेल दिखाई पड़ता है। आर्यों में स्त्रियों के अनेक विवाह का चलन नहीं था, किंतु *महाभारत* की कथा की एक विशेष नायिका एक साथ पाँच भाइयों की पत्नी है। धीरे-धीरे यहाँ पहले से मौजूद आदिवासियों के साथ नए आने वाले लोग भी आर्यों के साथ घुलमिल कर एक हो रहे थे और इस नयी स्थिति के अनुरूप वैदिक धर्म में संशोधन किया जा रहा था। इसने सबको समेटकर चलने वाला वह उदार व्यापक रूप ग्रहण कर लिया था जिससे आधुनिक हिंदू धर्म निकला।

यह इसलिए संभव हो सका क्योंकि बुनियादी नज़रिया यह जान पड़ता है कि सत्य पर किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता। उसे देखने और उस तक पहुँचने के बहुत रास्ते हैं। इसलिए सब तरह के अलग-अलग, यहाँ तक कि विरोधी विश्वासों को भी सहन कर लिया गया।

महाभारत में हिंदुस्तान की (या जिसे दंतकथाओं के अनुसार जाति के आदि पुरुष भरत के नाम पर भारतवर्ष कहा जाता है) बुनियादी एकता पर बल देने की निश्चित कोशिश की गई है। इसका एक और पहले का नाम था आर्यावर्त्त, यानी आर्यों का देश। किंतु यह नाम मध्य-भारत में विंध्य पर्वत तक फैले उत्तर-भारत के इलाके तक सीमित था। *रामायण* की कथा दक्षिण में आर्यों के विस्तार की कहानी है। वह विराट गृहयुद्ध, जो बाद में हुआ और जिसका वर्णन *महाभारत* में किया गया है, उसके बारे में मोटे तौर से अंदाज़ लगाया गया है कि वह ईसा पूर्व चौदहवीं शताब्दी के आसपास हुआ होगा। वह लड़ाई भारत (या संभवत: उत्तरी भारत) पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए लड़ी गई थी। इसी लड़ाई से एक अखंड भारत की

अवधारणा की शुरुआत हुई। इस अवधारणा के अनुसार आधुनिक अफ़गानिस्तान का बहुत बड़ा हिस्सा भारत में शामिल था। इस हिस्से को उस समय गांधार (जिससे वर्तमान कंदहार शहर का नाम पड़ा है) कहा जाता था और उसे भारत का अभिन्न हिस्सा समझा जाता था। वास्तव में इसी कारण मुख्य शासक की पत्नी का नाम गांधारी यानी गांधार की कन्या पड़ा था। दिल्ली नाम का आधुनिक शहर नहीं, बल्कि इस इलाके निकट बसे हुए हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ नाम के पुराने शहर समय भारत की राजधानी बने थे।

महाभारत में कृष्ण से संबद्ध आख्यान भी हैं और प्रसिद्ध काव्य *भगवद्गीता* भी। *गीता* के दर्शन के अलावा, इस ग्रंथ में शासन कला और सामान्य रूप से जीवन के नैतिक और आचार संबंधी सिद्धांतों पर जोर दिया गया है। धर्म की इस बुनियाद के बिना न सच्चा सुख मिल सकता है और न समाज में एका रह सकता है। इसका लक्ष्य है लोकमंगल, किसी विशेष वर्ग का नहीं बल्कि पूरे विश्व का। लेकिन धर्म स्वयं सापेक्ष है और सत्य-निष्ठा, अहिंसा आदि जैसे कुछ बुनियादी सिद्धांतों को छोड़कर खुद समय और मौजूदा परिस्थितियों पर निर्भर करता है। ये सिद्धांत टिकाऊ हैं और अपरिवर्तनशील भी, परंतु इसके अलावा धर्म, जो कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों का सम्मिश्रण है, समय के साथ बदलता है। अहिंसा पर यहाँ और दूसरी जगहों पर भी जो बल दिया गया है, वह दिलचस्प है क्योंकि अहिंसा और किसी अच्छे मकसद के लिए संघर्ष करने में प्रत्यक्ष रूप से कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता। पूरे महाकाव्य का केंद्र एक विराट युद्ध है। ज़ाहिर है इस प्रसंग में अहिंसा की अवधारणा का ज्यादातर संबंध मकसद से था यानी हिंसा की मानसकिता के अभाव से, आत्मानुशासन से, क्रोध और घृणा की भावना पर नियंत्रण से था।

महाभारत एक ऐसा समृद्ध भंडार है जिसमें अनेक अनमोल चीजें ढूँढ़ी जा सकती हैं। यह विविधतापूर्ण, भरपूर और खदबदाती जिंदगी से सराबोर है। यह केवल नैतिक शिक्षा की पुस्तक नहीं है। महाभारत से मिलने वाली शिक्षा को एक वाक्य में इस रूप में सूत्रबद्ध किया गया है–"दूसरों के साथ ऐसा आचरण नहीं करो जो तुम्हें खुद अपने लिए स्वीकार्य न हो।" इसमें लोक-मंगल पर जो बल दिया गया है वह ध्यान देने योग्य है। महाभारत में कहा गया है–"जो बात लोक-हित में नहीं है या जिसे करते हुए तुम्हें शर्म आए उसे कभी नहीं करना चाहिए।" फिर कहा गया है–"सच्चाई, आत्म-संयम, तपस्या, उदारता, अहिंसा,

धर्म का निरंतर पालन-सफलता के साधन हैं जाति और कुल नहीं।" "धर्म जीवन और अमरता से बड़ा है।" "सच्चे आनंद के लिए दुख भोगना आवश्यक है।" धन के पीछे दौड़ने वाले पर व्यंग्य किया गया है–"रेशम का कीड़ा अपने धन के बोझ से ही मरता है।" और अंत में एक जीवित और विकासशील जनता के लिए आदेश है–"असंतोष प्रगति का प्रेरक है।"

भगवद्गीता

भगवद्गीता महाभारत का अंश है परंतु उसकी अपनी अलग जगह है और वह अपने आप में मुकम्मल है। यह 700 श्लोकों का एक छोटा सा काव्य है। इसकी रचना बौद्धकाल से पहले हुई थी। तब से अब तक इसकी लोकप्रियता और प्रभाव कम नहीं हुआ। आज भी भारत में इसके प्रति पहले जैसा आकर्षण बना हुआ है। विचार और दर्शन का हर संप्रदाय इसे श्रद्धा से देखता है और अपने ढंग से इसकी व्याख्या करता है। संकट के समय, जब मनुष्य के मन को संदेह सताता है और वह कर्तव्य के बारे में दुविधाग्रस्त होता है तो वह प्रकाश और मार्गदर्शन के लिए गीता की ओर देखता है क्योंकि यह संकट-काल के लिए लिखी गई कविता है– राजनीतिक और सामाजिक संकट के लिए और उससे भी अधिक मनुष्य की आत्मा के संकट के लिए। *गीता* की असंख्य व्याख्याएँ की गईं और अब भी लगातार की जा रही हैं। आधुनिक युग के विचार और कर्म क्षेत्र के नेताओं तिलक, अरविंद घोष, गाँधी सभी ने इसकी अपने ढंग से व्याख्या की है। गाँधी जी ने इसे अहिंसा में अपने दृढ़ विश्वास का आधार बनाया है, औरों ने धर्म-कार्य के लिए हिंसा और युद्ध का औचित्य इसी के आधार पर सिद्ध किया है।

इस काव्य का आरंभ *महाभारत* का युद्ध आरंभ होने से पहले युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद से होता है। अर्जुन परेशान है। उसकी अंतरात्मा युद्ध और उसमें होने वाले व्यापक नरसंहार के, मित्रों और संबंधियों के संहार के विचार के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। आखिर यह किसलिए? कौन सा ऐसा लाभ हो सकता है जो इस हानि, इस पाप का परिहार कर सके। उसकी पुरानी कसौटियाँ नाकाम हो जाती हैं, उसके मूल्य ढह जाते हैं। अर्जुन इंसान की उस पीड़ित आत्मा का प्रतीक बन जाता है जो युग-युग से कर्तव्यों और नैतिकता के तकाज़ों की दुविधा से ग्रस्त है। इस निजी बातचीत से हम एक-एक करके व्यक्ति के कर्तव्य, सामाजिक आचरण, मानव जीवन में सदाचार और सबको नियंत्रित करने वाले आध्यात्मिक दृष्टिकोण जैसे विषयों की ओर बढ़ते हैं। *गीता* में ऐसा बहुत कुछ है जो आध्यात्मिक है। इसमें मानव विकास के तीन मार्गों ज्ञान, कर्म और भक्ति के बीच समन्वय करने का प्रयास किया गया है। बाकी दो की तुलना में भक्ति पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ तक कि इसमें एक व्यक्तिगत ईश्वर का स्वरूप उभरता है, हालाँकि उसे पूर्णरूप परमेश्वर का ही अवतार माना गया है। *गीता* में मानव-अस्तित्व की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है। रोज़मर्रा की जिंदगी की व्यावहारिक समस्याएँ इसी संदर्भ में सामने आती हैं। *गीता* में जीवन के कर्तव्यों के निर्वाह के लिए कर्म का आह्वान किया गया है, अकर्मण्यता की निंदा की गई है और कहा गया है कि कर्म और जीवन को समय के उच्चतम आदर्शों के अनुरूप होना चाहिए क्योंकि ये आदर्श समय-समय पर स्वयं ही बदल सकते हैं। युग धर्म अर्थात् विशेष युग के अपने आदर्श को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

गीता का संदेश न सांप्रदायिक है और न ही किसी विशेष विचारधारा के लोगों को संबोधित करता है। इसकी दृष्टि सार्वभौमिक है। उसमें कहा गया है– "सभी रास्ते मुझ तक आते हैं।" इसी सार्वभौमिकता के कारण गीता सभी वर्गों और संप्रदायों के लोगों के लिए मान्य हुई। इसकी रचना के बाद ढाई हज़ार वर्षों में भारतवासी बार-बार परिवर्तन, विकास और ह्रास की प्रक्रिया से गुज़रे हैं, उन्हें एक के बाद एक, तरह-तरह के अनुभव हुए हैं। एक के बाद एक विचार सामने आए हैं, पर उन्हें हमेशा *गीता* में कोई ऐसी जीवंत चीज़ मिली है जो विकसित होते विचारों से मेल खाती रही।

प्राचीन भारत में जीवन और कर्म

बुद्ध के समय से पहले का वृत्तांत हमें जातक कथाओं में मिलता है। इन जातक कथाओं का वर्तमान रूप बुद्ध के कुछ समय बाद का है। जातक कथाओं में उस समय का वर्णन है जब भारत की दो प्रधान जातियों-द्रविड़ों और आर्यों का अंतिम रूप से मेल हो रहा था। कहा जा सकता है कि जातक पुरोहित या ब्राह्मण परंपरा तथा क्षत्रिय या शासक परंपरा के विरोध में लोक-परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ग्राम-सभाएँ एक सीमा तक स्वतंत्र थीं। आमदनी का मुख्य ज़रिया लगान था। माना जाता था कि ज़मीन पर लगाया जाने वाला कर, उत्पादन में राजा का हिस्सा है। उसका भुगतान, हमेशा तो नहीं पर अक्सर गल्ले या पैदावार की शक्ल में किया जाता था। यह कर उपज के छठे भाग के करीब होता था। यह सभ्यता मुख्य रूप से कृषि केंद्रित थी और इसकी बुनियादी इकाई स्वशासित गाँव थे। राजनीतिक और आर्थिक ढाँचा इन्हीं ग्राम-समुदायों से बनाया जाता था जिन्हें दस-दस और सौ-सौ के समूह में बाँट दिया जाता था।

जातकों के वर्णनों से एक खास तरह का विकास उभरकर सामने आता है। यह विशेष दस्तकारियों से जुड़े लोगों की अलग बस्तियों और गाँवों की स्थापना थी। इस तरह एक गाँव बढ़इयों का था, एक गाँव लोहारों का था। इसी तरह और पेशों के लोगों के गाँव थे। ये खास पेशेवर लोगों के गाँव आमतौर पर शहर के पास बसे होते थे। शहर में उनके विशेष उत्पादनों की खपत हो जाती थी और बदले में उन्हें जिंदगी की दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने का सामान मिल जाता था। ऐसा लगता है कि पूरा गाँव सहकारिता के उसूल पर काम करता था और बड़े ठेके लेता था। शायद इस तरह अलहदा रहने और संगठित होने से जाति प्रथा का विकास और विस्तार हुआ होगा।

जातकों में सौदागरों की समुद्री यात्राओं के हवाले भरे हुए हैं। सूखे रास्तों से रेगिस्तान को पार करके भड़ौच के पश्चिमी बंदरगाह और उत्तर में गांधार और मध्य एशिया तक कारवाँ जाया करते थे। भड़ौच से जहाज़ बेबिलोन (बावेरू) के लिए फ़ारस की खाड़ी को जाया करते थे। नदियों के रास्ते बहुत यातायात होता था। जातकों के अनुसार बेड़े बनारस, पटना, चंपा (भागलपुर) और दूसरे स्थानों

से समुद्र की ओर जाते थे और वहाँ से दक्षिणी बंदरगाहों और लंका और मलय टापू तक।

भारत में लिखने की प्रथा बहुत पुरानी है। पाषाण युग के मिट्टी के पुराने बर्तनों पर ब्राह्मी लिपि के अक्षर मिले हैं। मोहनजोदड़ो में मिले शिलालेखों को अब तक पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका है। वे ब्राह्मी लेख जो पूरे भारत में मिले हैं निश्चित रूप से उस मूल लिपि में है जिससे भारत में देवनागरी और अन्य लिपियों का विकास हुआ है। अशोक के कुछ लेख ब्राह्मी लिपि में हैं, उत्तर-पश्चिम में मिलने वाले कुछ अन्य लेख खरोष्टी लिपि में हैं।

ईसा पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी में पाणिनि ने संस्कृत भाषा में अपने प्रसिद्ध व्याकरण की रचना की। उन्होंने अपने से पहले के व्याकरणों का उल्लेख किया है। उनके समय तक संस्कृत का रूप स्थिर हो चुका था और वह एक निरंतर विकासशील साहित्य की भाषा बन चुकी थी। पाणिनि आज भी संस्कृत व्याकरण पर आधिकारिक प्रमाण माना जाता है, हालाँकि बाद के वैयाकरणों ने उसमें कुछ जोड़ा भी है और उसकी व्याख्या भी की है। यह दिलचस्प है कि पाणिनि ने यूनानी लिपि का उल्लेख किया है। इससे संकेत मिलता है कि पूर्व दिशा में सिकंदर के आने से बहुत पहले भारत और यूनान के बीच किसी-न-किसी तरह का संपर्क हो चुका था।

औषध-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें भी थीं और अस्पताल भी। अनुश्रुति हैं कि भारत में औषध-विज्ञान के जनक धन्वंतरि थे। किंतु सबसे प्रसिद्ध पुरानी पाठ्यपुस्तकें ईसवी सन् की शुरू की सदियों में लिखी गईं। इनमें औषधि पर चरक की पुस्तकें हैं और शल्य चिकित्सा पर सुश्रुत की। कहा जाता है कि चरक उन राजा कनिष्क के दरबार में राजवैद्य थे जिनकी राजधानी पश्चिमोत्तर दिशा में थी। इन पाठ्यपुस्तकों में बहुत-सी बीमारियों का ज़िक्र है और उनकी पहचान और इलाज के तरीके बताए गए हैं। इनमें शल्य चिकित्सा, प्रसूति-विज्ञान, स्नान, पथ्य, सफ़ाई, बच्चों को खिलाने और चिकित्सा के बारे में शिक्षा को विषय बनाया गया है। लेखक का रुझान प्रयोगात्मक है और शल्य प्रशिक्षण के दौरान मुर्दों की चीर-फाड़ कराई जाती थी। सुश्रुत ने शल्य-क्रिया के औज़ारों का ज़िक्र किया है, साथ ही ऑपरेशन का भी; जिसमें अंगों को काटना, पेट काटना, ऑपरेशन से बच्चे को जन्म दिलाना, मोतियाबिंद का ऑपरेशन आदि सब शामिल हैं। घावों के जीवाणुओं को धुआँ देकर मारा जाता था। ईसा पूर्व तीसरी चौथी सदी में जानवरों के अस्पताल भी थे। यह जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव था जिसमें अहिंसा पर बल दिया जाता था।

महाकाव्यों के युग में अक्सर वनों में एक तरह के विश्वविद्यालयों का ज़िक्र किया गया है। ये कस्बे या शहर से बहुत दूर नहीं होते थे। इनमें प्रसिद्ध विद्वानों के आसपास शिक्षा प्रशिक्षण के उद्देश्य से लोग इकट्ठे होते थे। शिक्षा में तरह-तरह के विषय शामिल थे जिनमें सैनिक प्रशिक्षण भी होता था। इन वनाश्रमों को इसलिए पसंद किया जाता था क्योंकि यहाँ शहरी जीवन के आकर्षणों से बचाकर विद्यार्थियों के लिए नियमित और ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना संभव होता था।

कुछ वर्ष तक यहाँ प्रशिक्षण के बाद उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे वापस लौटकर गृहस्थ और नागरिक जीवन बिताएँ। इन वन-शिक्षालयों में प्राय: छोटे-छोटे गुट रहते थे, गोकि इस बात के संकेत मिलते हैं कि लोकप्रिय अध्यापक बड़ी संख्या में विद्यार्थियों को आकर्षित करते थे।

बनारस हमेशा शिक्षा का केंद्र रहा। बुद्ध के समय में भी वह प्राचीन केंद्र माना जाता था। किंतु उत्तर-पश्चिम में, आधुनिक पेशावर के पास एक प्राचीन और प्रसिद्ध विश्वविद्यालय तक्षशिला या तक्षिला था। यह विश्वविद्यालय विशेष रूप से विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र और कलाओं के लिए मशहूर था और भारत के दूर-दूर के हिस्सों से लोग यहाँ आया करते थे। तक्षशिला का स्नातक होना सम्मान और विशेष योग्यता की बात समझी जाती थी। जो चिकित्सक यहाँ के आयुर्विज्ञान विद्यालय से पढ़कर निकलते थे, उनकी बड़ी कद्र होती थी। कहा जाता है कि जब कभी बुद्ध बीमार पड़ते थे तो उनके भक्त इलाज के लिए एक मशहूर चिकित्सक को बुलाते थे, जो तक्षशिला का स्नातक था। ईसा पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी महान वैयाकरण पाणिनि ने भी यहीं शिक्षा पाई थी।

इस तरह तक्षशिला बुद्ध से पहले ब्राह्मण शिक्षा-पद्धति का विश्वविद्यालय था। बौद्ध-काल में यह बौद्ध-ज्ञान का भी केंद्र बन गया था। सारे भारत और सीमा पार से बौद्ध विद्यार्थी यहाँ खिंचे चले आते थे। यह मौर्य साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी सूबे का मुख्यालय था।

उस सुदूर अतीत के भारतीय कैसे थे? हमारे लिए इतने पुराने और हमसे इतने भिन्न समय के बारे में कोई धारणा बनाना कठिन है। फिर भी हमें जो जानकारियाँ उपलब्ध हैं उसके आधार पर एक धुँधली-सी तसवीर उभर कर सामने आती है। वे खुले दिल के, आत्मविश्वासी और अपनी परंपराओं पर गर्व करने वाले लोग थे। रहस्य की खोज में हाथ-पाँव मारने वाले, प्रकृति और मानव जीवन के बारे में बहुत से प्रश्नों से भरे, अपनी बनाई हुई मर्यादा और मूल्यों को महत्त्व देने वाले, पर जीवन में सहज भाव से आनंद लेने वाले और मौत का लापरवाही से सामना करने वाले लोग थे।

महाभारत का चित्रयुक्त फारसी अनुवाद 'रज़्मनामा'

(संकलित)

महाभारत का चित्रयुक्त फारसी अनुवाद 'रज़्मनामा'

भारत में महाभारत महाकाव्य बहुत ही प्रसिद्ध है। इसके किरदार और घटनाएँ आज भी लोगों को लुभाती हैं। यहाँ तक कि आज की पीढ़ी भी इसके प्रसंगों और घटनाओं में बहुत रुचि रखती है। महाभारत का प्रभाव केवल भारत में ही नहीं वरन विश्व के कई देशों में देखने को मिलता है, और ये प्रभाव आज ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से ही देखने को मिला है। यह महाकाव्य केवल हिन्दी में ही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं में भी अनुवादित किया गया है, जिसके द्वारा पूरा विश्व ही इस महाकाव्य से प्रभावित हुआ है। तो आइये आज बात करते हैं महाभारत के फ़ारसी अनुवाद "रज़्मनामा" की।

रज़्मनामा महाभारत का ही फ़ारसी अनुवाद है और इसे 'युद्ध की किताब' (बुक ऑफ़ वॉर) के नाम से भी जाना जाता है। फारसी में, "रज़्म" का अर्थ है "युद्ध" और "नाम" का अर्थ है "कहानी" या "महाकाव्य"। इसलिए, रज़्मनामा का अर्थ है युद्ध की एक कहानी। 1574 में, अकबर ने फतेहपुर सीकरी में एक इबादत खाना (जहाँ अनुवाद का कार्य होता है) शुरू किया। एक लाख श्लोकों वाली महाभारत का फ़ारसी अनुवाद कार्य 1582-1584 की अवधि के दौरान हुआ।

इस अनुवाद कार्य की एक प्रति (कॉपी/Copy) जयपुर के "सिटी पैलेस म्यूज़ियम" (City Palace Museum) में भी उपलब्ध है। रज़्मनामा की विशेषता यह है कि इसमें महाभारत की घटनाओं का चित्रण भी किया गया है जिसका श्रेय मुगल चित्रकार मुश्फिक़ को जाता है। ख्वाजा इनायतुल्लाह द्वारा दौलताबाद से मंगवाए गए पृष्ठ पर लिखी गई जयपुर रज़्मनामा के 169 पृष्ठों में कलाकारों के नाम के साथ लघुचित्र भी हैं। जयपुर रज़्मनामा में अकबर, शाहजहाँ और शाह आलम की मुहर भी लगी हुई है। इस पांडुलिपि में 169 प्रकरण सचित्र हैं। इस प्रति के कलाकार बसावन, दासवंत और लाल थे।

रज़्मनामा की दूसरी प्रति 1598 और 1599 के बीच पूरी की गई थी। पहली प्रति की तुलना में दूसरी प्रति अधिक विस्तृत है। इस प्रति में मिले 161 चित्र महाभारत के प्रसंगों की व्याख्या करते हैं। अकबर के दरबारी अब्द अल-कादिर बदायुनी के अनुसार, अकबर ने अपने राज्य के सभी आमिर को ये प्रतियाँ भेजने का आदेश दिया, और उन्हें ईश्वर के उपहार के रूप में स्वीकार करने के निर्देश दिए। इतिहासकार अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखी गई प्रस्तावना के अनुसार, इस उपहार के वितरण का उद्देश्य बहुत ही पवित्र था। अकबर का मानना था कि विभिन्न धर्मों और विश्वासों के तर्कसंगत विषयों को प्रत्येक भाषा में अनुवादित किया जाना चाहिए।

रज़्मनामा को एशियन आर्ट म्यूज़ियम, सैन फ्रांसिस्को (Asian Art Museum, San Francisco) में "पर्ल्स ऑन अ स्ट्रिंग : आर्टिस्ट्स, पेटंस एंड पोएट्स एट दी ग्रेट इस्लामिक कोर्ट" की प्रदर्शनी के रूप में 2016 में दिखाया गया। इस पूरे वॉल्यूम को डिजिटल कर दिया गया था और यह प्रदर्शिनी सभी के लिए ऑनलाइन भी उपलब्ध है।

महाभारत का अनुवाद किस प्रकार किया गया था, इसका वर्णन समकालीन लेखक बदाऊनी मुन्तखब अल-तवारीख ने किया। उनके अनुसार अकबर ने एक रात भारत के विद्वान पुरुषों को एकत्रित किया तथा महाभारत पुस्तक का अनुवाद करने का निर्देश दिया। महाभारत के अनुवाद में नकीब खान, बदाउनी मुन्तखब अल-तवारीख, मुल्ला शिरि, सुल्तान हाजी थानेसरी 'मुनफरीद', और शेख फैज़ी का विशेष योगदान है। इसके अनुवाद के लिए अकबर ने संस्कृत विद्वानों जैसे देबी मिश्रा, सत्वादन, मधुसूदन मिश्रा, रुद्र भट्टाचार्य आदि की सहायता भी ली। दशवंत, बसावन, लाल, मुकुंद, केशव, मुहम्मद शरीफ और फारुख चेला जैसे कलाकारों ने मुगल लघु चित्रकला के कुछ बेहतरीन नमूने इस अनुवाद के लिए दिए। अकबर की प्रतिलिपियों में 168 चित्र हैं, जो उस अवधि के किसी भी अन्य सचित्र पांडुलिपि से अधिक थे।

मुगलों की मध्ययुगीन पांडुलिपियों से यह पता चलता है कि वे संस्कृत भाषा से बहुत अधिक प्रभावित थे। अकबर द्वारा अक्सर आयोजित किये जाने वाले धार्मिक सम्मेलनों में संस्कृत के विद्वान भी शामिल हुआ करते थे। अबुल फ़ज़ल के 'गंगाधर', मौलाना शेरी के 'हरिबंस', बदाउनी के 'कथा सरित सागर', अबुल फज़ल के 'किशन जोशी', फैज़ी के 'लीलावती' और 'नल दमन', सहित संस्कृत की पुस्तकों राजतरंगिणी, अथर्ववेद, भगवद् गीता, रामायण और महाभारत जैसे संस्कृत ग्रन्थ भी फारसी में अनुवादित किये गए थे जो कि संस्कृत भाषा की सुंदरता और प्रभाव को दर्शाते हैं।

महाभारत के अट्ठारह पर्वों का निम्नलिखित रूप से फ़ारसी

रूपांतरण किया गया है, जिसमें कुछ भिन्नताएँ भी हैं :

• **आदि पर्व :** महभारत और रज़्मनामा दोनों में ही 8,884 श्लोक हैं, जो कौरवों और पांडवों का वर्णन करते हैं।

• **सभा पर्व :** दोनों में 2,511 श्लोक हैं। इसमें जादथल (Jadthal) का भाइयों को विश्व-विजय पर भेजना, राजसूय का आयोजन, जुए की सभा का आयोजन वर्णित है।

• **वन पर्व :** महाभारत में संस्कृत के 11,664 श्लोक हैं जबकि फारसी अनुवाद में 11,360 को ही वर्णित किया गया है। पांडवों के 12 साल के वनवास को इसमें उल्लेखित किया गया है।

• **विराट पर्व :** इस पर्व में 2,050 श्लोक संस्कृत के हैं, जबकि 2,005 ही फारसी अनुवाद में हैं। पांडवों की वन से वापसी और राजा भरत के राज्य में अज्ञातवास इसमें वर्णित किया गया है।

• **उद्योग पर्व :** महाभारत में 6,698 श्लोक संस्कृत के हैं किन्तु फारसी अनुवाद में 6,238 श्लोक ही दिए गए हैं। पांडवों का अपनी पहचान बताना और कुरखत (Kurkhat) में जाकर सेना की व्यवस्था करना इसमें उल्लेखित है।

• **भीष्म पर्व :** दोनों में ही 5,884 श्लोक हैं। युद्ध का प्रारम्भ इसमें दिखाया गया है।

• **द्रोण पर्व :** दोनों में 8,909 श्लोक हैं। द्रोण के पतन का वर्णन इसमें किया गया है।

• **कर्ण पर्व :** दोनों में 4,964 श्लोक हैं। कर्ण की दो दिन की लड़ाई और मृत्यु को इसमें वर्णित किया गया है।

• **शल्य पर्व :** इस पर्व में संस्कृत के 3,230 श्लोक हैं किंतु फारसी अनुवाद में 3,208 ही श्लोक हैं। शल्य और 90 लोगों की मृत्यु तथा 18 दिनों के युद्ध का वर्णन इसमें है।

• **सौप्तिका पर्व :** इस पर्व में संस्कृत 870 श्लोक हैं जबकि फारसी अनुवाद में 880 श्लोक हैं। कृतवर्मा के नेतृत्व में रात में हमले का वर्णन इसमें किया गया है।

• **स्त्री पर्व :** दोनों में ही 775 श्लोक हैं। दोनों पक्षों की महिलाओं का विलाप, गांधारी का कृष्ण को श्राप देना, इसमें वर्णित है।

• **शान्ति पर्व :** संस्कृत में 14,725 श्लोक हैं, जबकि फारसी में 19,374 श्लोक दिये गये हैं। जादशल (Jadshall) का कृष्ण के उपदेशों और सलाह को ध्यान से सुनना इसमें वर्णित किया गया है।

• **अनुशासन पर्व :** इसमें 8,000 श्लोक हैं। भीकम (Bhikam) की भिक्षा और दान का उल्लेख इसमें वर्णित है।

• **अश्वमेधिका पर्व :** संस्कृत के 3,320 श्लोक हैं; जबकि फारसी में 3,308 श्लोकों को ही वर्णित किया गया है।

• **आश्रमवासिका पर्व :** इस पर्व में 1,506 श्लोक संस्कृत के हैं जबकि केवल 300 श्लोक ही फ़ारसी में दिये गये हैं। धृष्टिक का पुनरुद्धार, जरासंध (Jarjashan) की माता गांधारी, जोधिष्ठर (Jodishtar) की माता कुन्ती का कुरुक्षेत्र के जंगलों (जहाँ व्यास रहते थे) में जाने का उल्लेख इसमें किया गया है।

• **मौसुल पर्व :** इस पर्व में संस्कृत के 320 श्लोक हैं और 300 श्लोकों को ही फारसी में अनुवादित किया गया है। जदवान (बलराम) और कृष्ण की दयनीय परिस्थितियों में मृत्यु का उल्लेख इस पर्व में किया गया है।

• **महाप्रस्थानिका पर्व :** इस पर्व में 360 संस्कृत श्लोक हैं और 320 श्लोक ही फारसी अनुवाद में मिलते हैं। जधिष्टर (Jadishtar) और उसके भाइयों का संसार त्यागना एवं हिमालय की ओर प्रस्थान को इसमें वर्णित किया गया है।

• **स्वर्गारोहण पर्व :** संस्कृत के 209 श्लोक इस पर्व में दिये गये हैं जबकि 200 श्लोक ही फ़ारसी अनुवादित हैं। पर्वतों की ओर जाते हुए पांडवों का आत्मत्याग करना इसमें वर्णित है।

प्रसंगवश :

2 अक्टूबर 1988 : महाभारत सीरियल के प्रसारण का दिन

बी आर चोपड़ा ने डॉ० राही मासूम रज़ा को... "महाभारत" टी०वी० सीरियल की पटकथा लिखने को कहा।

समयाभाव की वजह से डॉ० राही मासूम रज़ा ने इस परियोजना से जुड़ने से इन्कार कर दिया लेकिन पता नहीं क्या सोचकर चोपड़ा जी ने राही जी के नाम की घोषणा कर दी।

दूसरे दिन यह ख़बर सुर्ख़ियों में आ गयी। चोपड़ा को खत मिलने लगे– 'क्या सभी हिंदू मर गए हैं, जो चोपड़ा ने एक मुसलमान को 'महाभारत' के डायलॉग्स-लेखन का काम सौंप दिया है...?

चोपड़ा ने सारे ख़त रज़ा के पास भेज दिए। रज़ा ने कहा–"अब महाभारत की पटकथा मैं ही लिखूँगा क्योंकि मैं गंगा का पुत्र हूँ। मुझसे ज्यादा भारत की सभ्यता और संस्कृति की बाबत कौन जानता है... ।"

उसके बाद रज़ा का महाभारत की सफलता में योगदान एक इतिहास है।

एक संस्मरण

सच्चे नायक की पहचान

सृजनपाल सिंह

(आईआईएम अहमदाबाद से स्नातक हैं, जो भारत के 11वें राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के नीति और प्रौद्योगिकी सलाहकार थे। वे डॉ. कलाम सेंटर और होमी लैब के संस्थापक और सीईओ हैं)

तारीख थी 10 अगस्त 1979, डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम, तब 47 वर्ष के थे, सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (एसएलवी) के परियोजना निदेशक थे, जो एक नया रॉकेट विकसित करने की महत्वाकांक्षी परियोजना थी, जो भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) को भारतीय धरती से उपग्रहों को प्रक्षेपित करने में सक्षम बनाती।

ज़्यादातर पश्चिमी सरकारों और मीडिया ने भारत की अंतरिक्ष की खोज को अनुचित, शौकिया और मूर्खतापूर्ण रूप से अति-महत्वाकांक्षी माना। भारत को अस्वच्छ जनता, भ्रमित पहचानों, झगड़ते राजकुमारों और अस्थिर राजनीतिक ताने-बाने के एक अनियंत्रित टुकड़े से ज़्यादा कुछ नहीं माना गया।

उपनिवेशवादियों को यकीन था कि गरीबी और भूख भारत की पहचान है। सपेरों का देश अंतरिक्ष में कैसे पहुँच सकता है?

वे उस कठोर परिश्रम से अनभिज्ञ थे जो टीम एक दशक से अधिक समय से कर रही थी।

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम। (फोटो: गेटी)

अंततः, वह डी-डे आ गया।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति के नेतृत्व में टीम श्रीहरिकोटा स्थित लॉन्च पैड पर पहुँची। उल्टी गिनती शुरू हुई।

टी माइनस 4 मिनट, टी माइनस 3 मिनट, टी माइनस 2 मिनट, टी माइनस 1 मिनट, टी माइनस 40 सेकंड। और कंप्यूटर ने उल्टी गिनती रोक दी।

स्क्रीन पर संदेश चमक उठा, "लॉन्च मत करो।"

डॉ. कलाम ने वर्षों बाद इस घटना को याद करते हुए कहा, "मैं मिशन निदेशक था, मुझे निर्णय लेना था।"

विशेषज्ञों ने उन्हें प्रक्षेपण के साथ आगे बढ़ने की सलाह दी क्योंकि उन्हें गणनाओं पर पूरा भरोसा था। उस समय, कंप्यूटर अक्सर गलत हो जाते थे– और अगर कंप्यूटर की गणना और इंसान के निर्णय के बीच टकराव होता था, तो कोई बाद वाले को चुनता था।

डॉ. कलाम ने कहा, "मैंने कंप्यूटर को बायपास कर दिया और रॉकेट लॉन्च कर दिया। यह एक बड़ी गलती साबित हुई।"

"प्रक्षेपण के बाद उपग्रह को प्रक्षेपित करने से पहले चार चरण होते हैं। पहला चरण ठीक से चला, लेकिन दूसरे चरण में यह अनियंत्रित हो गया। यह घूमने लगा। उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के बजाय, इसने बंगाल की खाड़ी में गिरा दिया," डॉ. कलाम ने भारत के राष्ट्रपति बनने के बाद अपने कई भाषणों और पुस्तकों में उस दिन को जीवंत रूप से याद किया।

डॉ. कलाम ने कहा कि कंप्यूटर की चेतावनी को खारिज करने का फैसला उनका था। "पहली बार मुझे असफलता का सामना करना पड़ा, और असफलता को कैसे संभालना है? सफलता तो मैं संभाल सकता हूँ, लेकिन असफलता को कैसे संभालना है?"

एक विस्फोटित रॉकेट के टुकड़े को पानी में गिराकर परियोजना शुरू करना, युवा टीम के लिए एक झटका था।

यह सच का एक महत्वपूर्ण क्षण था, सिर्फ़ एस.एल.वी. के लिए ही नहीं बल्कि इसरो और भारत के लिए भी। देश अपने अंतरिक्ष मिशन को खोने के कगार पर था और वैश्विक खिलाड़ी के रूप में फिर से उभरने की उसकी भावना खतरे में थी। तभी एक अप्रत्याशित नायक सामने आया।

उस समय इसरो के अध्यक्ष प्रोफेसर सतीश धवन थे। उन्होंने अपनी टीम को मीडिया की तीखी टिप्पणियों से बचाने का फैसला किया और खुद प्रेस कॉन्फ्रेंस का सामना किया। उस समय इसरो के नए अध्यक्ष धवन ने कहा, "आज हम असफल हो गए हैं। मैं अपने प्रौद्योगिकीविदों, अपने वैज्ञानिकों, अपने कर्मचारियों का समर्थन करना चाहता हूँ ताकि अगले साल वे सफल हों।"

पश्चिमी मीडिया के आक्रामक रवैये के बीच धवन ने इस विफलता को अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने भरोसा दिलाया कि अगले साल भारत निस्संदेह सफल होगा।

असफलताओं से सीखें

एक साल बाद, 18 जुलाई 1980 को, उसी टीम को दूसरे प्रयास के लिए तैनात किया गया। एक बार फिर दुनिया ने संदेह की दृष्टि से देखा।

इस बार टीम ने अपनी गलतियों का विश्लेषण किया और उन्हें सुधारा। उल्टी गिनती शुरू हुई और कंप्यूटर प्रक्षेपण प्रक्रिया के अनुरूप था। कोई गड़बड़ी नहीं हुई! डॉ. कलाम और उनकी टीम ने, प्रो. धवन के समग्र नेतृत्व में, रोहिणी आरएस-1 को सफलतापूर्वक कक्षा में प्रक्षेपित किया।

यह भारत और उसके आत्मविश्वास के लिए एक बड़ी छलांग

थी। लेकिन पर्दे के पीछे, इससे भी महत्वपूर्ण बात घटी। प्रोफेसर धवन डॉ. कलाम के पास गए और कहा, "कलाम, आप मीडिया को संभालिए।"

डॉ. कलाम अक्सर याद करते हुए कहते थे, "मैंने उस दिन एक बहुत ही महत्वपूर्ण सबक सीखा। जब विफलता हुई, तो संगठन के नेता ने इसकी जिम्मेदारी ली। जब सफलता मिली, तो उन्होंने इसे अपनी टीम को दे दिया। मैंने जो सबसे अच्छा प्रबंधन सबक सीखा है, वह मुझे किताब पढ़कर नहीं मिला; यह उस अनुभव से मिला है।"

प्रोफेसर धवन ने अपनी महानता और विनम्रता से न केवल भारत को अंतरिक्ष में पहली बड़ी सफलता दिलाई, बल्कि उससे भी बढ़कर उन्होंने कुछ बेहतरीन नेताओं को तैयार किया, जिन्होंने अंतरिक्ष में और उससे परे भारत के भविष्य को आकार दिया।

इसरो ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

भारतीय अंतरिक्ष एजेंसी ने 2024 में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं, जिसमें एक ही मिशन में सर्वाधिक उपग्रह प्रक्षेपित करना, सुदूर संवेदी उपग्रहों के सबसे बड़े समूह का प्रबंधन करना तथा चंद्रमा के सुदूर दक्षिणी बिंदु पर सॉफ्ट लैंडिंग करने वाली पहली एजेंसी बनना शामिल है।

भारत का अंतरिक्ष मिशन न केवल प्रौद्योगिकी के कारण सफल हुआ, बल्कि असफलताओं के बाद फिर से उभरने की इसकी क्षमता के कारण भी सफल हुआ।

1979 के चार दशक बाद, जब चंद्रयान-2 चंद्रमा पर दुर्घटनाग्रस्त हुआ था, टीम ने वही दृढ़ता दिखाई– असफलता से सबक लेते हुए, 23 अगस्त, 2023 को शानदार सफलता का मार्ग खोज लिया– जिस दिन को अब हम राष्ट्रीय अंतरिक्ष दिवस के रूप में मनाते हैं। •

डॉ. रणजीत मानववादी कविता पुरस्कार - वर्ष 2025

गत 16 अगस्त 2025 को एक ऑनलाइन मीटिंग में प्रथम डॉ. रणजीत मानववादी कविता पुरस्कार की घोषणा की गई। यह पुरस्कार मानववादी कविता लेखन के प्रोत्साहन के उद्देश्य से युवा कवियों को दिया जाता है। चयन समिति ने वर्ष 2025 का 'डॉ. रणजीत मानववादी कविता पुरस्कार' श्री बच्चा लाल 'उन्मेष' को को उनके कविता संग्रह "कौन जात हो भाई" के लिए देने का निर्णय लिया है। श्री बच्चा लाल 'उन्मेष' भदोही (उत्तर प्रदेश) में सहायक अध्यापक कार्यरत हैं और मुख्यतः दलित-सरोकार के विषय पर कविताएँ लिखते हैं। 'उन्मेष' जी की कविताओं में दलित-शोषित वर्ग का दर्द और जातिवादी मानसिकता पर तीखा व्यंग्य देखने को मिलता है।

पुरस्कार के तहत ₹30,000 की धनराशि, प्रशस्ति-पत्र और स्मृति-चिह्न शामिल है। 16 अगस्त 2025 को यह पुरस्कार एक ऑनलाइन मीटिंग के माध्यम से दिया गया।

(रिपोर्ट:- मनोज मलिक)

संप्रति बंगलुरू निवासी 89 वर्षीय डॉ रणजीत विश्वा के पाठकों के सुपरिचित लेखक हैं। •

गीत एक : संदर्भ दो

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानी 'काबुलीवाला', काबुल का एक पठान जीविकोपार्जन के लिए अपने वतन और परिवार से दूर घूम घूमकर भारत के शहर कोलकाता में काबुल के मेवे बेचता। शाम को गंगा के तट पर एक बाबाजी का गीत सुनता है जो एक नदी नहीं, सृष्टि के रहस्य और दर्शन का गीत है।

गंगा आये कहाँ से, गंगा जाये कहाँ रे
आये कहाँ से, जाये कहाँ रे
लहराये पानी में जैसे धूप-छाँव रे

गंगा आये कहाँ से, गंगा जाये कहाँ रे
लहराये पानी में जैसे धूप-छाँव रे

रात कारी दिन उजियारा मिल गये दोनों साये
साँझ ने देखो रंग रुप्प के कैसे भेद मिटाये
लहराये पानी में जैसे धूप-छँव रे ...

काँच कोई माटी कोई रंग-बिरंगे प्याले
प्यास लगे तो एक बराबर जिस में पानी डाले
लहराये पानी में जैसे धूप-छँव रे ...

नाम कोई बोली कोई लाखों रूप और चेहरे
खोल के देखो प्यार की आँखें दबते रे संग मेरे
लहराये पानी में जैसे धूप-छँव रे ...

लिखा गुलजार ने, गाया हेमंत कुमार ने और संगीत सलिल चौधरी का।

गीत के अंत में 'काबुलीवाला' पठान कहता है–

– सुभान अल्लाह बाबाजी। बाबाजी तुम कितना अच्छा गाना गाती।

– तुम्हें गाना अच्छा लगा?

– इसका मतबल नहीं समझती।

– इसका मतलब यह है खान, दिन और रात में कितना फ़र्क होता है लेकिन शाम का वक़्त दोनों का भेदभाव मिटा देता है। इसी तरह से मेरी तुम्हारी बोली में फ़र्क है, रंग रूप में फ़र्क है लेकिन दिल में प्यार हो तो सब एक हैं, कोई फ़र्क नहीं।

– सुभान अल्लाह, ओ बाबाजी तुम कितना बड़ा बात बोली या खुदा कितना बड़ा बात बोली!

(इस संदर्भ के बरक्स भाषा के नाम पर राजनीति करने की कुटिलता को रखकर सोचें! –सं.)

संस्मरण

स्थान, काल को लाँघते विश्वव्यापी गाँधी

रामशरण जोशी

(कनाडा से)

गाँधी भौगोलिक + राजनैतिक सरहद मुक्त विश्व मानवता के नायक हैं। यह सच्चाई ज़मीनी है, बौद्धिक नहीं है। पिछले कुछ महीनों में अमेरिका और कनाडा के विभिन्न शहरों की यात्रा का अवसर मिला है। विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के साथ टकराया भी, जिनमें शामिल हैं घरों में सफाई करनेवाली महिलाएँ, आप्रवासी लोग, हज़ामतकर्मी, टैक्सी चालक, मोबाइल विक्रेता, वेटर, स्वास्थ्यकर्मी, मेले-ठेले के आमजन और बुद्धिजीवी। कल ही का किस्सा है। सोमालिया की एक हिजाबधारी महिला एडमोंटन (कनाडा) पुस्तकालय में टकरा गई। वह दुबई होते हुए इमीग्रेंट के रूप में पहुँची हुई थीं। नफीस हिंदुस्तानी में बातचीत हुई। दुबई में काम के दौरान हिन्दुस्तानी सीखी थी। नाम था ज़मज़म। यह मक्का क्षेत्र में स्थित पवित्र कुएँ का नाम है। महिला पवित्र गंगा जल से भी परिचित थी। वे गाँधी जी के नाम व काम से परिचित मिलीं।

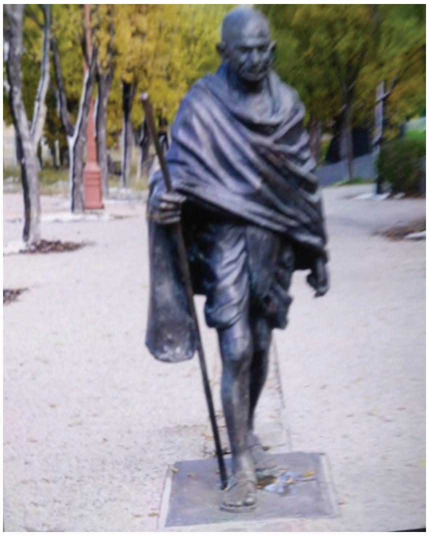

पिछले दिनों एडमोंटन में ग्रीष्मकालीन मेला लगा था। वहाँ एक स्टाल पर चाय और समोसा बेचने वाला पाकिस्तानी टकरा गया। नाम था फैज़। फैज़ अहमद फैज़ और गाँधी जी के कारनामों से खूब वाकिफ़। उनकी प्रसिद्ध नज़्म भी सुनाई 'लाज़िम है हम भी देखेंगे, जब तख़्त गिराए जायेंगे– ताज उछाले जायेंगे...' इसी तरह पिछले मास बोस्टन के पास एक ट्रेनर मिला था। श्वेत युवक था। सामान्य वार्तालाप में उसने गाँधी जी के बारे में कई जानकारियाँ बतला दीं। स्कूल में उसने पढ़ा था। 2014 में मैं परिवार सहित न्यूयॉर्क की एक अश्वेत बस्ती के अपार्टमेंट में रुका हुआ था। उसकी मालकिन एक अश्वेत महिला अधिवक्ता थीं।

उनकी पुस्तक आलमारी में गाँधी जी की आत्मकथा सहित कई पुस्तकें थीं। दरवाज़े पर गाँधी जी का एक प्रसिद्ध कथन झूल रहा था : दुनिया में बदलाव देखने से पहले खुद को बदलो। इन दिनों छठे दशक के प्रसिद्ध मानवाधिकार नेता जॉन लेविस की जीवनी पढ़ रहा हूँ। लेविस को मार्टिन लूथर किंग जूनियर के मुख्य अनुयायी के रूप में देखा जाता है। जीवनी में बीसियों स्थान पर गाँधी जी के कथनों, सत्याग्रह व अवज्ञा आंदोलन को कोट किया गया है। पूर्व राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा ने भी अपनी आत्मकथा में महात्मा गाँधी को कई सफ़ों पर आदरपूर्वक याद किया है।

यहाँ तक लिखा है कि दुनिया के मौजूदा हिंसक माहौल में गाँधी होते तो शांति व अहिंसा का आंदोलन चलाते। मानवता को राहत मिलती। दक्षिण अफ्रीका के दिवंगत राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला भी गाँधी जी की बहुमुखी भूमिका को आदर के साथ याद करते हैं। उनकी आत्मकथा 'लॉन्ग वाक टू फ्रीडम' पढ़ी जानी चाहिए। आज दुनिया के अधिकांश देशों के बड़े नगरों में गाँधी जी की मूर्तियाँ हैं।

विदेशों में भारत के सभी शासनाध्यक्ष गाँधी-मूर्ति के समक्ष शीश नवाते हैं।

•

पढ़ते-पढ़ाते

1

यह सच है कि देश धर्मशाला नहीं होते– लेकिन उन्हें धर्मशालाओं जैसा होना चाहिए। अमेरिका की एक ताक़त इस बात में भी है कि उसने अरसे तक ख़ुद को धर्मशाला जैसा बनाए रखा। दूसरे देशों के लोग वहां बसते रहे और अमेरिकी बनते रहे। भारत जैसा देश भी चार हज़ार साल तो धर्मशाला ही रहा। तमाम धर्मों के लोग यहां आकर बसते और यहाँ के होते रहे। धर्मशाला शब्द शायद बना भी ऐसे ही किसी अनुभव से होगा। बहरहाल, वाकई किसी राष्ट्र राज्य को इतना लचीला नहीं होना चाहिए कि लोग उसे धर्मशाला मानने लगें। लेकिन उसे इतना सख़्त भी नहीं होना चाहिए कि वह किसी को जेल लगने लगे।

2

नागरिकता एक तथ्य है और भारतीयता एक भाव। कोई व्यक्ति भारतीय नागरिक होते हुए भी यूरोप के सपनों में जी सकता है। जबकि कोई विदेशी भारत से अभिभूत यहीं आकर बस जाने की सोच सकता है। लेकिन जब कोई सच्ची/झूठी भारतीयता की बात करने लगता है तो लगता है उसका कोई विशेष एजेंडा है। और ऐसा करना सच्ची भारतीयता को असंभव बनाता है। वह सच्ची भारतीयता का विशेषाधिकार कुछ ही लोगों तक सीमित रखना चाहता है।

एक पंजाबी कविता

पुल

सुरजीत पातर

मैं जिन लोगों के लिए पुल बन गया था

वे जब मेरे से गुज़रकर जा रहे थे
मैंने सुना मेरे बारे में कह रहे थे :

वह कहाँ छूट गया है चुप-सा आदमी
शायद पीछे लौट गया है

हमें पहले ही ख़बर थी कि उसमें दम नहीं है।

(अनुवाद : चमनलाल)

एक लघु कविता

अभी भी बचे हैं

मदन कश्यप

अभी भी बचे हैं
कुछ आख़िरी बेचैन शब्द
जिनसे शुरू की जा सकती है कविता

बची हुई हैं
कुछ उष्ण साँसे
जहाँ से सम्भव हो सकता है जीवन

गर्म राख़ कुरेदो
तो मिल जाएगी वह अन्तिम चिंगारी
जिससे सुलगाई जा सकती है फिर से आग।

एक कविता : अलेक्जेंड्रिया वाशिंगटन से

नंबर 48 की बस

सेलिना चौबे

selinachaubey@gmail.com

दोस्त बन गयी मेरी,
दूर की नगरी में,
नंबर 48 की बस

यूं तो ले जाती थी हर जगह
समय पर,
दुकान, जिम, बैंक और दफ़्तर।
टाइम-टेबल की पक्की थी
नंबर 48 की बस!

घर लौटते वक़्त
मिट जाती थी थकान,
दिखते दूर से जब
आती हुई बस पर चमकते '4' और '8'
दो जादू-भरे नंबर !

एक दिसम्बर की रात की बात है
खड़ी थी मैं तेज़ गिरती बर्फ में
वीरान सड़क के कोने पर

न था किसी का आना-जाना वहाँ,
न चल रही थी उस मौसम में
कोई भी टैक्सी या बस

मोबाइल का चार्ज ख़तम था,
और तेज़ हो गई थी जानलेवा ठण्ड

सड़क के उस पार
दिख तो रहे थे कई मकान
लेकिन इस नए ज़माने की नगरी में
किसका दरवाज़ा खटकाती मैं?

लगता था जम जाएगी जान
खड़े खड़े अँधेरे बस शेल्टर में

जब मेरी अवाक नज़रों के सामने
दूर से मुड़ती दिखाई दी,
ठीक अपने सही समय पर,
गर्मी और रोशनी से भरी
नंबर 48 की बस !

सोचा,
आजकल जहाँ बढ़ती जा रही है दूरी
इंसान से इंसान की
वहाँ कम से कम इसने तो
निभा दी दोस्ती–

मशीनी युग की
'रिलाएबल' और 'एफिशिएंट'
नंबर अड़तालीस की बस।

श्रेष्ठ साहित्य वही जो सामाजिक भूमिका निबाहे, हस्तक्षेप करे, जनपक्षधर भावनाओं, मनुष्यता और सद्भाव की जरूरत को वाणी दे।

जन्म दिन विशेष :

सदैव प्रासंगिक गाँधी

सदानंद शाही

वरिष्ठ विचारक, कवि, समीक्षक

sadanandshahi@gmail.com

1. गाँधी की अमरता के आगे

गाँधी की हत्या
केवल तीस जनवरी उन्नीस सौ अड़तालीस
को नहीं हुई थी

जब ब्रूनो ज़िन्दा जलाए गये थे
गाँधी की हत्या तब भी हुई थी

जब मंसूर को सूली पर चढ़ाया गया
तब भी हुई थी गाँधी की हत्या

गाँधी की हत्या तब भी हुई थी
जब ईसा मसीह को सलीब पर
चढ़ाया गया था

सुकरात को
जब ज़हर दिया गया था
तब भी
गाँधी की हत्या हुई थी

सूली पर चढ़ा मंसूर बचा रह जाता है
ईसा मसीह बचे रह जाते हैं
सुकरात अमर हो जाते हैं

मर जाते हैं
ज़हर देने वाले
ख़ाक में मिल जाते हैं
ईसा मसीह को
सूली चढ़ाने वाले

सूरज का चक्कर काटती हुई पृथ्वी
रोज़ देती है
ब्रूनो के ज़िन्दा होने का सबूत

गाँधी की अमरता के आगे
रोज़ रोज़ मरते हैं
हत्यारे।

2. गाँधी में कबीर

गाँधी नहीं मरेंगे
मर जायेंगे गाँधी को मारने वाले
जैसे कबीर को मारने के
चक्कर में पड़े
पीर और पैग़म्बर मर गये थे
मर गये थे सातों भुवन के चौधरी

कबीर की तरह
गाँधी ने भी पी लिया था राम रसायन
कबीर की तरह
गाँधी ने भी जान लिया था राम नाम का मर्म

जैसे कबीर राम को बुन सकते थे
अपने करघे पर
गाँधी बुन लेते थे राम को
अपने चरखे पर

जैसे कबीर और राम मिल कर हो गये थे एक
वैसे ही गाँधी और राम हो गये थे एकमेक

कहते हैं
जब कबीर बनते थे ताना
राम बन जाते थे बाना
गाँधी कपास हो जाते थे
राम सूत बनकर
लिपट जाते थे लच्छे में
चरखे से गूंज उठती थी
राम धुन

सूत और कपास
ताना और बाना
मिलकर बन जाती
ईश्वर नाम की चादर

न ईश्वर मरता
न मरते हैं कबीर

फिर कैसे मर सकते हैं
गाँधी ...!

3. गाँधी जी की आँखें

राज सिंहासन पर बैठे-बैठे
जार्ज पंचम ने सुना
गाँधी के बारे में

उन्हें एक कौतुक की तरह
लगे थे गाँधी जी
सम्राट के मन में
गाँधी को देखने की उत्सुकता पैदा हुई

उन्होंने हुकुम दिया चर्चिल को
चर्चिल ने वायसराय को

वायसराय ने गाँधी को बताई
सम्राट की इच्छा

क़िस्सा कोताह यह कि
गाँधी जी और सम्राट की भेंट हुई
ऐन बकिंघम पैलेस में

अधनंगे गाँधी को देखकर
सम्राट मुस्कुराया
राजसी वेशभूषा में सज्जित
सम्राट को देखकर
गाँधी भी मुस्कुराए

बातें क्या थीं
बस मुस्कराहटों का
आदान प्रदान होता रहा
दोनों के बीच

गाँधी को आँखों की मुस्कान देखकर
सहम गया सम्राट

मुलाक़ात का समय ख़त्म हुआ
गाँधी ने हाथ जोड़ा
और लौट गये वापस

सम्राट का सिंहासन
हिलता रहा देर तक.

कविता

वह काम से लौटती है

डॉ. लक्ष्मीकांत

देर शाम
उस के आने पर
तमाम चिल्लपों और
चिंघाड़ते टेलीविज़न के बावजूद
चुपचाप पड़े घर में
जान आती है
देर शाम
उस के आने पर
संवाद की समस्या से
जूझते घर को
एक नयी जुबान आती है

वो पटकती है
उदासीन सी
एक झोला मेज पर
भानुमती के पिटारे सा
सब छिपा कर भी
सब बताता सा

इसी में है
शाम सुबह की सब्जियाँ
पति के सिगरेट का पैकेट
रेड लेबल चाय
बीमार सास के लिए
उपभोक्ता भण्डार से
खरीदी कुछ दवाएँ
और हाँ,
दस रुपए वाले दो चॉकलेट

चाय के बाद
अगले आधे घंटे, वो
छिटपुट काम निपटाती है
सब सवालों के जवाब देती है

घर का परिदृश्य
बदल गया है
महरी, पड़ोस के
खिजाऊ देश सी
शिकायतें करती है

खांसती सास
महान भारतीय संस्कृति की
रक्षक भूमिका धरती है

डबल बैड पर अधलेटा
अलसाया सा एक पुरुष
बीच बीच में
फतवे जारी करता है

स्कूल–नोट्स और
होमवर्क के बोझ से
मुक्त होना चाहते बच्चे
सरकारी दफ्तर के
कामचोर बाबू नज़र आते हैं

सैकड़ों जुबान और
हज़ार भाषाओं के बीच
शाम की ये सभा समाप्त होती है

देर रात जब कहीं
एक पौरुष जागृत होता है
वो बस सोच रही है
सुबह जल्दी उठकर
भागना है
बच्चों के टिफ़िन में
क्या रखना है
एक और,
टूटी सी ये रात
बेसुधी की डगर पर चल पड़ी
नींद से–
रूठी सी ये रात!!

एक गीत

जीवन की रामलीला

ज्ञान प्रकाश आकुल

एक समर्थ गीतकार

रामलीला हो चुकी है,
दर्शकों के दल घरों में खो गये।
और पात्रों ने उतारे
मुकुट, बंदर के मुखौटे
काम जिनके पास था तो
काम पर वे लोग लौटे,
धो लिया चेहरा ज़रा सा,
राक्षस सब आदमी से हो गये।

उड़ गयी रंगत गुलाबी
खुल गया फिर रंग भूरा
फिर ग़रीबी मुस्करायी
दिक्कतों ने खूब घूरा,
लौटने का मन नहीं था,
पर ज़रूरत ने बुलाया तो गये।

क्या विजेता क्या पराजित
मंच के नीचे खड़े हैं
धनुष, रावण के खडग सब
एक झोले में पड़े हैं
आँख में आँसू भरे हैं
राम रावण फिर दरी पर सो गये।

लघुकथा : कुछ ज़रूरी बातें

डा. अशोक भाटिया

(लघुकथा में एक विशिष्ट नाम)

Email : ashokbhatiahes@gmail.com

लघुकथा के छोटे आकार और सामान्यतः दीखने वाले एक-दो कथा-प्रसंगों के आधार पर इसे लिखना बड़ा आसान मान लिया जाता है। स्थिति इसके विपरीत है। हिन्दी लघुकथा-लेखन में कई बड़े लेखकों ने हाथ आजमाए लेकिन फिर पीछे हट गए। राजेन्द्र यादव ने तो स्पष्ट लिखा कि "लघुकथा लिखना बड़ा कठिन है।" और इधर लघुकथा लेखन की भरमार हो रही है। लोग पन्द्रह दिन में भी लघुकथा-संग्रह लिखकर मार्केट में फेंक रहे हैं। आइए, कुछ पक्षों पर विचार करें।

प्रेमचंद ने लिखा है कि 'सच्चा साहित्य वही है, जो हममें बेचैनी और गति उत्पन्न करे।' यह बेचैनी और गति पाठक को तभी महसूस होगी, जब रचनाकार के भीतर होगी और उसकी रचना में छनकर आएगी। प्रेमचंद के साहित्य में राष्ट्रीय धरातल के तत्कालीन सरोकार और समस्याएँ शिद्दत के साथ मौजूद हैं। उनके लेखन का लक्ष्य राष्ट्रीय था। अब ज़रा लघुकथा लेखक अपने बारे विचार करें। मुख्य लक्ष्य क्या? बेहतर राष्ट्र का आपका क्या सपना है? उसके मार्ग में कौन-सी बाधाएँ हैं? वे कैसे दूर होंगी? क्या उन बाधाओं को लेकर आपकी कलम में वह बेचैनी और गति है, जिसका ज़िक्र प्रेमचंद ने किया था?

प्रसिद्ध कवि रघुवीर सहाय का एक लेख है–'यथार्थ यथास्थिति नहीं'। यथार्थ तो निरन्तर है और परिवर्तनशील है। यह इतनी तेज़ी से बदल रहा है कि जब तक इसे समझने के निकट पहुँचते हैं, तब तक स्थितियाँ बदल चुकी होती हैं। बदलते यथार्थ के साथ लघुकथा-लेखक अपने को कितना जोड़ पा रहा है? लेखन एक सामाजिक जिम्मेवारी है, इसलिए लेखक को यश-प्राप्ति का झंडा उठाकर चलने की बजाय सामाजिक यथार्थ के आयामों को समझने, उसके सूक्ष्म तंतुओं को पकड़ने और उसके कलात्मक रूपान्तरण की प्रक्रिया पर गंभीरतापूर्वक काम करने को प्राथमिकता देनी होगी। सच यह है कि हिन्दी लघुकथा में गंभीरता से सृजन करने वाले रचनाकार बहुत कम हैं।

हिन्दी लघुकथा की, एक संक्षिप्त ही सही, स्वस्थ परम्परा मौजूद है। लघुकथा -लेखन में उतरने से पहले भी, और उसके सामान्तर भी, लघुकथा की परम्परा का अध्ययन करना बड़ा ज़रूरी है। यह इसलिए, कि पहले लिखी जा चुकी श्रेष्ठ लघुकथाओं को, अनजाने में, फिर से लिखने वाली अप्रिय स्थिति न आने पाए। आज कोई लेखक यशपाल की 'परदा', प्रेमचंद की 'कफन' या फणीश्वर नाथ रेणु की 'तीसरी कसम उर्फ़ मारे गए गुलफ़ाम' जैसी कहानी इसलिए नहीं लिखेगा कि वे तो पहले ही लिखी जा चुकी हैं। आज लिखने की शैली भी बदल गई। लेकिन अधिकतर लघुकथा-लेखक एक ही ढर्रे पर लिखे चले जा रहे हैं। पुरस्कार, सम्मान और वाहावाही के ढेर लग गए हैं, और लेखक महोदय सन्तुष्ट हैं, मानो इसीके लिए वे लिख रहे हैं। एक लघुकथा लिखकर उसे दोबारा देखने की ज़हमत तक नहीं उठाते। जब हम किसी विधा की परम्परा पर दृष्टि डालते हैं तो रचनात्मक लेखन के विविध आयामों से हम रू-ब-रू होते हैं। क्या कहा, क्यों कहा और कैसे कहा? – मोटे तौर पर तीनों क्षेत्रों के रेशे-रेशे से हमारा परिचय होता है। पाठक और लेखक– दोनों रूपों में हम समृद्ध होते हैं, भीतर एक लेखकीय परिवेश निर्मित होता है।

लेखन के पीछे चिन्तन (विचार) और संवेदना- दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। और भी अनेक आयाम हैं, किन्तु यहाँ हम उदाहरणों द्वारा इन दोनों पक्षों पर चर्चा करेंगे।

पहले विचार और दृष्टिकोण की चर्चा करें। प्रसिद्ध लेखक हरिशंकर परसाई ने अस्सी से अधिक लघुकथाएँ भी लिखी हैं। उनकी एक बहुचर्चित लघुकथा है–'जाति'। इसमें वे जातिवाद के कोढ़ और उसके सामाजिक दुष्प्रभावों को उभारने की दृष्टि से रचना को बुनते हैं। रचना के मुख्य भाग पर पाठक का ध्यान जाए, इसके लिए वे शुरुआती प्रसंग को अत्यन्त संक्षिप्त कर देते हैं। देखिए-

"कारखाना खुला, कर्मचारियों के लिए बस्ती बन गई।

ठाकुरपुरा से ठाकुर साहब और ब्राह्मणपुरा से पंडित जी कारखाने में काम करने लगे और आस-पास के ब्लॉक में रहने लगे।"

इस रचना की शुरुआत देखें– "कारखाना खुला।" किस चीज का कारखाना, कहाँ खुला, कितना बड़ा है? –लेखक ऐसा कुछ नहीं बताता। इसलिए, कि लघुकथा के मुख्य प्रसंग से इन तथ्यों का कोई लेना-देना नहीं। इसी तरह बस्ती के बारे भी और कुछ बात नहीं की।

आगे देखें। "ठाकुरपुरा से ठाकुर साहब..." ऐसा क्यों कहा गया? उनके नाम भी ले सकते थे, लेकिन 'ठाकुरपुरा' और 'ब्राह्मणपुरा' से लेखक बताना चाहता है कि जातीय संकीर्णता और अहंकार हमारे समाज में कितने गहरे रच-बस चुके हैं। कोई ठाकुर साहब है, तो कोई पंडित जी है। लेखक की रचना भी इसी विषय पर है। यह है लेखक की सजगता। रचना के अंत तक आते-आते वह हर तरह के पाठक को स्वीकार करने पर विवश कर देता है कि जातिवाद हमारे समाज का एक कलंक है, कोढ़ है। यह रचना की शक्ति है।

संवेदना मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली तरल धारा है। यह रचना में चाहे दिखाई न पड़े, किन्तु संवेदना का पुल बनाने का हितकारी काम करती है। प्रसिद्ध अमेरिकन अंग्रेजी कथाकार कार्ल सैंडबर्ग की लघुकथा 'रंग भेद' में लेखक की संवेदना उपेक्षित पात्र के साथ है, जो समाज में विभिन्न कारणों से घृणा और अपमान झेलता है। किन्तु इसके लिए वह घृणा करने वाले पात्र पर प्रहार न कर एक और मार्ग अपनाता है, जो रचना को नई ऊँचाई प्रदान करता है और

हर प्रकार का पाठक-वर्ग उसे न केवल स्वीकार करता है, बल्कि उसके साथ हो लेता है। आप पहले चार वाक्यों की इस लघुकथा का आस्वाद लें–

रंग-भेद

मियामी के तट पर बैठे उस गोरे आदमी ने रेत पर एक छोटा-सा वृत्त खींचा और सामने बैठे काले आदमी की ओर हिकारत से देखते हुए बोला-"एक काला आदमी इससे अधिक नहीं जानता।"

फिर उसने उस छोटे से वृत्त के इर्द-गिर्द एक बड़ा वृत्त खींचा और कहा, "एक गोरा आदमी इतना अधिक जानता है।"

इस बार काला आदमी उठा। उसने एक पत्थर के टुकड़े से दोनों वृत्तों के गिर्द एक बहुत बड़ा वृत्त खींचा और कहा, "इतना कुछ है, जो न गोरा आदमी जानता है, न काला आदमी।"

....

इस लघुकथा पर थोड़ी और चर्चा करें। 'मियामी के तट पर' –मियामी क्या है? नदी या किसी समुद्र का कोई तट? इसे जानकर पाठक को क्या करना है, क्योंकि मुख्य प्रसंग तो घृणा का है। दूसरा प्रश्न है कि गोरे आदमी और काले आदमी के नाम क्यों नहीं दिए गए? इसलिए कि नाम देने से रचना की सीमाएँ बनने लगतीं, क्योंकि वे नाम किसी देश या क्षेत्र के होते, जबकि गोरा आदमी और काला आदमी सारे संसार में मिलते हैं और लगभग सभी जगह भेदभाव और घृणा के शिकार होते हैं। यह लेखक की सजगता है कि वह अपने इस महान उद्देश्य वाली रचना को तमाम संकीर्णताओं से बचाकर उसे सार्वकालिक और सार्वभौमिक रचना बना देते हैं। हम कितना कम जानते हैं, और फिर उसे ही अपने अहंकार और घृणा के अस्त्र के रूप में लिए घूमते हैं। हम जो नहीं जानते, वह हमारे जानने के क्षेत्र से कितना बड़ा है, फिर भी अहंकार और घृणा के चलते उस क्षेत्र की तरफ देखते तक नहीं, जानने की बात तो उससे आगे का कदम है।

संवेदना की तरलता और भावुकता को स्पर्श करने वाली एक लघुकथा है 'विदाई' जिसके लेखक हैं मोहनलाल पटेल। इस गुजराती रचना में लेखक केवल दो स्थितियों को सजगता से आमने-सामने करता है और रचना को एक नया अर्थ और उत्कर्ष प्रदान कर जाता है। इसमें आई भावुक स्थिति भी मजबूत सरोकारों पर टिकी है। गणपत द्वारा बेची गई भैंस बार-बार रस्सा तुड़ाकर वापिस आ जाती है। तीसरी बार वे उसे फिर रख लेते हैं। लेकिन उसकी पत्नी कुँअर लगातार भैंस की पीठ पर हाथ फिराती रहती है। गणपत के समझाने पर कुँअर जोर से रोते हुए कहती है–"एक ढोर की आवभगत कर रहे हैं, उतनी बेटी के लिए नहीं कर सके। आश्रय की मारी वह तीन बार घर छोड़कर आई थी, लेकिन हमने ही उसे डरा-धमका के वापिस भेज दिया था...।" अन्त तक आते-आते पति-पत्नी स्वयं को बेटी के हत्यारे मानने लगते हैं। यह लघुकथा पाठक के मन में देर तक हलचल मचाती है और कई सवाल भी उठाती है। आखिर बेटी की 'विदाई' क्या हर स्थिति में सदा के लिए होती है? क्या कन्या कोई वस्तु है, जिसका दान किया जाता है और 'कन्यादान' की रस्म निभाई जाती है? क्या विवाह के बाद बेटी का माता-पिता पर और माता-पिता का बेटी पर कोई अधिकार नहीं रह जाता? यह कितनी क्रूर परम्परा है, स्त्री के एकदम खिलाफ, कि जिगर के टुकड़े के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है? क्या बेटियाँ भैंस से भी गई -बीती हैं, जिनके बारे समाज ने अब तक इस तरह नहीं सोचा, जैसा कि लेखक सोचने के लिए प्रेरित करता है। यह विचारणीय प्रश्न है।

रचनात्मक संवेदना कोई हवाई चीज़ नहीं है। वह सरोकार से जुड़कर व्यक्त होती है। इस प्रक्रिया में कल्पना अपने आप आवश्यकता अनुसार प्रवेश कर जाती है। 'रंग-भेद' के गोरे और काले आदमी को आप किसी तट पर नहीं देखेंगे– यह रचनात्मक कल्पना के कारण संभव हुआ। यही बात 'विदाई' के बारे कही जा सकती है। कल्पना रचना के रिक्त स्थान भरती है, उसे पूर्ण, समृद्ध और सुन्दर बनाती है। 'विदाई' के संवाद लेखकीय अनुभव और कलात्मक अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं।

अब इधर लिखी जा रही अधिकतर लघुकथाओं पर आइए। प्रायः ऐसा लगता है, मानो सड़क के किनारे खड़े दो व्यक्ति आपस में बातें कर रहे हों। उनकी बातचीत हू-ब-हू मानो रिकार्ड करके कागज पर उतार दी गई हो और उसे लघुकथा नाम दे दिया गया हो। ज़रा बताएँ, वह रचना कैसे हुई और लेखक का उसमें क्या योगदान है? हू-ब-हू प्रसंग लिख देना भोक्ता-मन की उपज है, जबकि रचयिता मन नया सृजन करेगा, पुनर्निर्माण करेगा, रचना की जरूरत के मुताबिक कल्पना का प्रयोग करेगा, घटनाओं की गुलामी नहीं करेगा।

लघुकथा की संक्षिप्त परंपरा से अनेक रचनाकारों की बहुत-सी लघुकथाओं का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है, जो डूबकर लिखी गई हैं, जिनमें पूर्णता और कलात्मकता का सौंदर्य है, जो पाठक के मन-मस्तिष्क पर दस्तक देती है। कई बार लघुकथा अर्थ की व्यंजना उभारने से ही अधिक प्रभावशाली हो जाती है। जैसे- रवीन्द्र वर्मा की 'पर्वतारोही' का अंतिम वाक्य है–'मैं जानता हूँ, दुनिया में गेंदों की कमी नहीं है।' यहाँ 'गेंद' शब्द एक विशेष उपलब्धि का प्रतीक है। रवीन्द्र वर्मा की ही 'चिड़िया' लघुकथा का अंतिम वाक्य है– 'क्या उसके चेहरे पर चिड़िया बची थी?' यहाँ कथावाचक, जो विवाह के बाद अपनी पत्नी को चिड़िया कहा करता था। पर संघर्षों में जीती असंतुष्ट पत्नी के बारे यह अन्तिम वाक्य 'चिड़िया' शब्द से पत्नी की उमंग, खुशी, सन्तुष्टि आदि अर्थों को सामने लाता है। इस प्रकार कुशल कथाकार अपनी कथाओं में बड़ी सहजता से प्रतीकों का प्रयोग करता है।

लघुकथा के गंभीर लेखकों और पाठकों के लिए श्रेष्ठ लघुकथाएँ पढ़ना बहुत ज़रूरी है। इनकी कथावस्तु, इनमें प्रयुक्त कल्पना, इनका विषय-निर्वाह, संवादों का प्रयोग, भाषा और शिल्प मिलकर आपकी सोच, संवेदना और व्यवहार को बेहतर बनाएँगी।

रचनाकार जब लिखता है तो वह मात्र लिखता ही नहीं है, वह कुछ बदलना भी चाहता है।

कुछ प्रसिद्ध लघु कथाएँ

प्रस्तुति : डॉ. अशोक भाटिया

अंग्रेजी लघुकथा :

रंग-भेद / *कार्ल सैंडबर्ग*

मियामी के तट पर बैठे उस गोरे आदमी ने रेट पर एक छोटा-सा वृत्त खींचा और सामने बैठे काले आदमी की ओर घृणा की दृष्टि से देखता हुआ बोला, "एक काला आदमी इससे अधिक नहीं जानता।"

फिर उसने उस छोटे-से वृत्त के इर्द-गिर्द एक बहुत बड़ा वृत्त खींचा और कहा, "एक गोरा आदमी इतना अधिक जानता है।"

इस बार काला आदमी उठा। उसने एक पत्थर के टुकड़े से दोनों वृत्तों के गिर्द एक बहुत बड़ा वृत्त खींचा और कहा, "इतना कुछ है, जो न गोरा आदमी जानता है,न काला आदमी।"

(अंग्रेजी से अनुवाद)

अंग्रेजी लघुकथा :

ईसा का चित्र / *ओ' हेनरी*

जीवन के सुख-दुःख का प्रतिबिम्ब मनुष्य के मुखड़े पर सदैव तैरता रहता है, लेकिन उसे ढूँढ़ निकालने की दृष्टि केवल कलाकार के पास होती है। वह भी एक कलाकार था। भावना और वास्तविकता का एक अद्भुत सामंजस्य होता था उसके बनाए चित्रों में।

एक बार उसके मन में आया कि ईसा मसीह का चित्र बनाया जाए। सोचते-सोचते एक नया प्रसंग उभर आया उसके मस्तिष्क में। छोटे-से ईसा को एक शैतान हंटर से मार रहा है, लेकिन जाने क्यों ईसा का चित्र नहीं बन रहा था। कलाकार की आँखों में ईसा की जो मूर्ति बनी थी, उसका मानव-रूप में दर्शन दुर्लभ ही था। बहुत खोजा, मगर वैसा तेजस्वी मुखड़ा उसे कहीं नहीं मिला।

एक दिन उद्यान में टहलते समय उसकी दृष्टि अनाथालय के आठ वर्ष के बालक पर पड़ी। बहुत भोला था–ठीक ईसा की तरह, सुंदर और निष्पाप। उसने बालक को गोद में उठा लिया और शिक्षक से आदेश लेकर अपने स्टूडियो में ले आया। अपूर्व उत्साह से उसने कुछ मिनटों में चित्र बना डाला। चित्र पूरा कर वह बालक को अनाथालय पहुँचा आया।

अब ईसा के साथ शैतान का चित्र बनाने की समस्या खड़ी हुई। वह एक क्रूर चेहरे की खोज में निकल पड़ा। दिन को कौन कहे, महीनों बीत गए। शराबखानों, वेश्याओं के मुहल्लों, गुंडों के अड्डों की ख़ाक छानी, मगर शैतान कहीं न मिला। चौदह वर्ष पूर्व बनाया गया चित्र अभी अधूरा पड़ा हुआ था। अचानक जेल से निकलते एक कैदी से उसकी भेंट हुई। सांवला रंग, बढ़े हुए केश, दाढ़ी और विकट हँसी। कलाकार ख़ुशी से उछल पड़ा। कहते-सुनते दो बोतल शराब के बदले कैदी को चित्र बन जाने तक रुकने के लिए राजी कर लिया।

बड़ी लगन से उसने अपना अधूरा चित्र पूरा किया। ईसा को हंटर मारने वाले शैतान का उसने हूबहू चित्र उतार लिया।

"महाशय! ज़रा मैं भी चित्र देखूँ।" कैदी बोला। चित्र देखते ही उसके माथे पर पसीने की बूँदें उभर आयीं। वह हकलाते हुए बुला, "क्षमा कीजिएगा। आपने मुझे अभी तक पहचाना नहीं। मैं ही आपका ईसामसीह हूँ। चौदह वर्ष पूर्व आप मुझे अनाथालय से अपने स्टूडियो ले आए थे। मुझे देखकर ही आपने ईसा का चित्र बनाया था।"

सुनकर कलाकार हतप्रभ रह गया।

(अंग्रेजी से अनुवाद)

चीनी लघुकथा :

ऊँट के बालों की फतूही / *ल्यांग च्येनह्वा*

'नारी देश' के नाम से मशहूर एक यंत्र मित्र दल हर साल के अंत में अपनी सदस्यों के काम की समीक्षा के लिए एक बैठक बुलाता है। एक बैठक की कार्यवाही की झलक पेश है।

'नारी देश' की 'महारानी' चओ ह्वेइइंग ने नोटबुक खोलते हुए कहा, "लान श्यूफांग काम पर बाहर गई हुई हैं। किसी ने उसे प्रगतिशील मजदूरिन चुनने की राय पेश की है। आपका क्या ख्याल है?"

चाओ याछिन बोली, "मैं सहमत हूँ। लान श्यूफांग सुबह सबसे पहले ड्यूटी पर आती और चूल्हे में आग सुलगाती है। काम ख़त्म करने के बाद वह हमेशा उस जगह की सफाई करके लौटती है। वह बहुत मेहनती है।"

छयेन श्या ने कहा, "पिछले वर्ष लान श्यूफांग को सड़क पर कलाई घड़ी मिली और वह सड़क पर खड़ी घड़ी खोने वाले का बहुत देर तक इंतज़ार करती रही। लम्बे इंतज़ार की वजह से उसकी जांघें तक सूज गईं।"

सुन लीफिंग ने अपनी राय पेश की, "अपनी बेटी के, उबले हुए पानी से जल जाने के वाद भी लान श्यूफांग ड्यूटी पर आई।"

ली क्वेइचि हाँ में हाँ मिलते हुए बोली, "जब ऊ य्वीचन जिगर की बीमारी से अस्पताल में भरती थी, तो लान श्यूफांग ने वहाँ जाकर उसकी तीमारदारी की थी।"

चओ ह्वेइइंग ने निष्कर्ष निकाला, "अच्छा, मैं आपकी राय लिखकर अपने कारखाने के मजदूर संघ को रिपोर्ट दूँगी। सुना है, मजदूर संघ के अध्यक्ष वेइ ने कहा है कि इस बार प्रगतिशील मजदूरों को उपहार के रूप में ऊँट के बालों की एक फतूही दी जाएगी।"

"ऊँट के बालों की फतूही?"

फिर कुछ मिनटों तक बैठक में सन्नाटा छाया रहा।

चाओ याछिन ने बात शुरू की, "इस पर बहस बेकार है। बारम्बार उन इने-गिने लोगों को ही प्रगतिशील मजदूर चुना जाता है।"

छयेन श्या ने चाओ की बात जारी रखी, "मैं नहीं मानती कि केवल लान श्यूफांग ही प्रगतिशील है। उसे सड़क पर घड़ी मिली तो उसने कारखाने के सुरक्षा विभाग को क्यों नहीं दी? दरअसल वह सबको अपनी नेकी जताने के लिए सड़क पर खड़ी रही।"

सुन लीफिंग बोली, “अब आप उसका चरित्र जान गई हैं। उसे इंसान से सहानुभूति नहीं है। मेरी बेटी उबले पानी से जल जाए तो मैं न सिर्फ काम पर ही न आऊँ, बल्कि कारखाने से कुछ भत्ता भी माँगूँ।”

ली क्वेइचि की बारी आई, “आज नौवें दशक में एक सहेली को छूत की बीमारी हो गई तो उसे अस्पताल जाकर उसकी तीमारदारी करने की क्या पड़ी थी? यह विज्ञान, स्वास्थ्य और मानसिक सभ्यता के खिलाफ है।”

चओ ह्वेइइंग उलझन में बोली, “आप किसी और को भी प्रगतिशील मजदूरिन चुन सकती हैं। मगर देर न करें। मुझे प्रगतिशील मजदूरिन की हालत की मजदूर संघ को रिपोर्ट देनी है। सुना है, इस बार प्रगतिशील मजदूर चुने जाने वाले को खुद कुछ पैसा भी देना पड़ेगा।”

“ऐसा क्यों?”

वातावरण अचानक गंभीर हो गया।

चओ ह्वेइइंग ने जवाब दिया, “इस बार पुरस्कार की राशि केवल सात यूआन है, मगर ऊँट के बालों की फतूही का दाम सत्रह य्वान है। इसलिए खजानची शन ने कहा है, “जो व्यक्ति प्रगतिशील मजदूर चुना जाएगा, उसे दस यूआन कारखाने को देना पड़ेगा।”

लम्बे समय तक ख़ामोशी।

अचानक चाओ याछिन बोली, “मैं अपनी राय पेश कर चुकी हूँ। किसी को भी चुनें,मेरी बला से।”

छयेन श्या ने कहा, “लान श्यूफांग को प्रगतिशील मजदूरिन चुनना ठीक ही है।”

सुन लीफिंग की राय थी, “मैं लान को चुनना चाहती हूँ। इंसान ही नहीं, देवताओं ने भी गलतियाँ की हैं।”

ली क्वेइचि ने कहा, “मैं तो शुरू से ही सहमत हूँ...”

चओ ह्वेइइंग ने नोटबुक में लान का नाम लिखा। लेकिन तभी उसने देखा, दरअसल उसने लान के बजाय ‘नान’ लिख डाला था। (चीनी शब्द ‘नान’ का अर्थ मुसीबत है।)

(चीनी से अनुवाद)

जर्मन लघुकथा :

दुकानदार और एक मृग एल्क

फ्रांत्स होलर

क्या आपने कभी कहावत सुनी है– ‘एल्क को गैस-मास्क बेचना?’ स्वीडन में यह बहुत ही उस्ताद लोगों को कहा जाता है। और अब मैं आपको बताना चाहता हूँ कि यह कहावत बनी कैसे?

एक बार एक दुकानदार होता है, जो इस बात के लिए मशहूर था कि वह सबको सब कुछ बेच सकता था।

वह एक दन्त-चिकित्सक को टूथ-ब्रश बेच चुका था, नानबाई को डबलरोटी और फलों की खेती करने वाले किसान को सेबों की पेटी बेच चुका था।

‘तुम दुकानदार तो बहुत अच्छे हो, लेकिन,’ उसके दोस्तों ने उससे कहा, ‘हम तब मानें, जब तुम किसी एल्क को मास्क बेचकर दिखाओ।’ तब दुकानदार उत्तर की ओर गया, जंगल तक, ऐसे जंगल तक जिसमें सिर्फ एल्क ही रहते थे।

‘नमस्ते,’ उसने पहले एल्क को देखते ही उसे कहा, ‘आपको तो एक गैस मास्क की जरूरत है।’

‘किसलिए?’ एल्क ने पूछा, ‘यहाँ की हवा तो बड़ी अच्छी है।’

‘आजकल सभी लोग गैस मास्क पहनते हैं’, दुकानदार ने कहा।

‘माफ़ कर भाई,’ एल्क बोला, ‘मगर मुझे नहीं चाहिए।’

‘बस रुक जाओ कुछ वक्त’, दुकानदार बोला, ‘तुम्हें जरूरत तो है।’

और कुछ दिनों बाद उसने जंगल के बीचो-बीच, जहाँ एल्क रहते थे, एक फैक्ट्री बनानी शुरू कर दी।

‘पागल हो गए हो क्या?’ उसके दोस्तों ने पूछा।

‘नहीं’, वह बोला, ‘मैं सिर्फ एल्क को गैस-मास्क बेचना चाहता हूँ।’

जब तक फैक्ट्री बनकर तैयार हुई, तब तक चिमनी से इतनी ज़हरीली गैसें निकल चुकी थीं, कि जल्दी ही एल्क दुकानदार के पास आया और बोला, ‘अब मुझे गैस-मास्क की जरूरत है।’

मैंने भी यही सोचा था, दुकानदार ने कहा,और उसे तुरंत एक बेच दिया। ‘बढ़िया क्वालिटी का माल है,’ बड़ी खुशमिजाजी से उसने कहा।

‘और एल्कों को भी’ एल्क ने कहा, ‘अब गैस-मास्क की जरूरत है। और हैं क्या तेरे पास?’ (एल्कों को नम्रतापूर्वक कहा जाने वाला ‘आप’ कहना नहीं आता।)

‘आप लोगों की किस्मत अच्छी है’, दुकानदार ने कहा, ‘मेरे पास हजारों हैं।’

‘वैसे’, एल्क ने कहा, ‘तू अपनी फैक्ट्री में बनाता क्या है?’

‘गैस-मास्क’ दुकानदार ने कहा।

(जर्मन भाषा से अनुवाद)

आख़िर क्या होती है लघुकथा

इन्दुकांत आंगिरस

9900297891

जो वक़्त की क़ीमत को बेहतर समझती है
जो अंधेरों में बिजली-सी चमकती है
पढ़ ले जिसे आप कुछ पलों में
जादू जिसका रहे सालों तक
जो उतर जाये रूह में आपकी
बस रहे न चंद ख़यालों तक,
जो काली घटा-सी आये बरसने को
और छोड़ जाये सबको तरसने को
तार तार तो होता है दामन इसका
लिखती अपने लहू से जब कोई क़िस्सा
कभी आग कभी पानी, कभी लहरों की रवानी
मुफ़लिस की जवानी होती है लघुकथा
कुछ कविता, कुछ कहानी होती है लघुकथा।

बुद्धिप्रकाश

संपत सरल

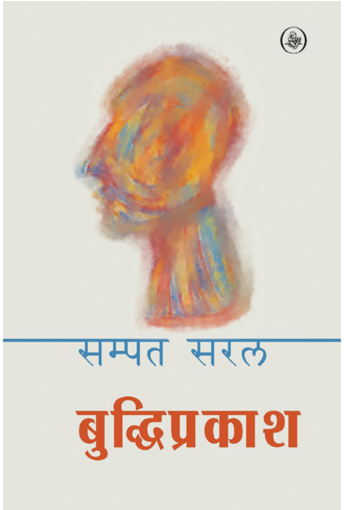

(राजकमल से सद्यः प्रकाशित व्यंग्य संकलन)

बुद्धिप्रकाश के रोल नम्बर सारे लोगों द्वारा, सारे अखबारों में, सारे दिन खोजने पर भी, इस साल भी नहीं मिले।

जून माह का अन्तिम सप्ताह। दोपहर का वक्त। यों तो गाँव में अखबार दोपहर तक ही आ पाते थे, लेकिन आज प्रात:काल ही ले आए गए। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने दसवीं कक्षा का परीक्षा परिणाम जारी किया था। एक बार भी किसी परीक्षा में नहीं बैठने वाले परिजन, एक ही परीक्षा में अनेक बार बैठ चुके अपने होनहारों के रोल नम्बर उन अनुभवियों से ढुँढ़वा रहे थे जो खुद तो दसवीं पास नहीं कर पाए, किन्तु दसियों बार दसवीं की परीक्षा दे चुकने के परिणामस्वरूप अखबारों में सट से परीक्षा परिणाम देखने की टेकनिक सीख गए थे।

जो विद्यार्थी पास मिला, उसके रोल नम्बर अन्य अखबारों में भी खोजे गए। यह जानने के लिए कि क्या वह वास्तव में पास हो गया है और यदि वास्तव में पास हो ही गया है तो क्या सभी अखबारों में पास हो गया है?

दसवीं कक्षा का रिजल्ट आने के दिन उपलब्ध हो सकने वाले सभी अखबार गाँव में मँगाने की परम्परा थी, ताकि किसी एक अखबार में किसी एक के रोल नम्बर जोग-संजोग से मिल ही जाएँ तो तुरन्त दूसरे अखबारों से पुष्टि की जा सके। गाँव में कई जन की कई बार किरकिरी हो चुकी थी कि एक अखबार में बेटे के रोल नम्बर मिले और माँ-बाप भावातिरेक में गुड़ बाँट बैठे। बाद में जब अंकतालिका के नाम पर अंक न मिलकर खाली तालिका मिली तो सारा किया-धरा गुड़गोबर हो गया।

बुद्धिप्रकाश का परीक्षा परिणाम परम्परागत निकला। वह दसवीं कक्षा में दसवीं बार भी फेल रहा।

बुद्धिप्रकाश का पिता सुदामा गाँव के ही सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र में कम्पाउंडर था तथा वहीं गया हुआ था। उसकी माँ गृहिणी थी। वह रसोई में खट रही थी। माँ थी तो निरक्षर, लेकिन टेलीविजन पर सीरियल देखते-देखते उसमें देश, काल, वातावरण विषयक समझ व्यापक थी।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का दसवीं का परीक्षाफल अखबारों में आ चुकने की जानकारी होने के बावजूद सुदामा ने घर पर फोन-वोन करके कुछ जानना जरूरी नहीं समझा। उसका मानना था कि कोई नई बात घटती तो घरवाले खुद ही फोन करके बता देते।

बुद्धिप्रकाश ने तमाम अखबारों को समेटा। उनकी बीन बनाई और फिल्मी गानों की धुनें बजाता हुआ रसोईघर में पहुँचा। उसने सारे अखबार चूल्हा फूँकने के उद्देश्य से माँ की ओर बढ़ाए।

बेटे के फिर फेल हो जाने से माँ को फिर बड़ी राहत मिली। उसने बेटे को कलेजे से लगाते हुए कहा, "तूने फिर मेरे दूध की लाज रख ली। दुर्भाग्य से पास हो बैठता तो लेने के देने पड़ जाते। तेरे दसवें प्रयास में पास होने पर गाँव वाले मिठाई माँगते और हमारे गाँव छोड़ने की नौबत आ जाती।"

माँ को सपूत की दसवीं बार की उपलब्धि पर दसवीं बार गर्व हुआ कि उसने दस बरस उन्हीं किताबों से निकाल दिये। कागज की कद्र की और पर्यावरण संरक्षण किया। उसने अखबारों को जलाकर बेटे के लिए तुलसी-अदरक वाली चाय बनाई। माँ को इस बात का भी हर्ष हुआ कि अखबारों के पूरी तरह फुँक जाने पर भी बुद्धिप्रकाश के रोल नम्बरों पर आँच नहीं आई।

बुद्धिप्रकाश ने चाय पी और चौक में पड़ी चारपाई पर बाएँ हाथ का तकिया बनाकर बाईं करवट लेट गया। उसने देखा कि दीवार पर एक चींटी बार-बार चढ़ने का प्रयास कर रही है, किन्तु हर बार गिर जाती है। ऐसा चींटी के साथ दस बार हो चुका है, पर चींटी हार नहीं मान रही है। अन्तत: चींटी चढ़ने में सफल रही, क्योंकि उसने दीवार बदल दी।

वह अखबार छापने वालों को भला-बुरा कहता हुआ सोचने लगा कि रीचेकिंग कराई जाए या रीएडमिशन ठीक रहेगा? उसने यह भी सोचा कि मुझे मार्कशीट की प्रतीक्षा करनी चाहिए। सम्भव है, मैं पास हो गया होऊँ, किन्तु अखबारों में मेरे रोल नम्बर छापते समय मशीनों की निबें टूट गई हों। अखबारों पर भरोसा करना मूर्खता है। जब सोनोग्राफी तक की रिपोर्ट गलत निकल जाती है तो ये तो बेचारे अखबार हैं।

गर्मी तो थी, किन्तु उसने अतिरिक्त गर्मी महसूस की। वह उठा। उसने ठंडक पाने की गरज से अपने सिर पर दो लोटे पानी उड़ेला। पानी उड़ेलकर सिर को कई बार झटका, जैसे भीग जाने पर श्वान

शरीर को झटकता है।

सुदामा संध्या समय भोजनकाल तक ही घर लौट पाता था, क्योंकि जिस स्वास्थ्य केन्द्र पर एक भी मरीज न आए, वहाँ देर तक रुकने में क्या हर्ज था?

घर लौटकर सुदामा ने जब भोजन कर लिया तो बेटे को भोजन के लिए बुलाया।

बुद्धिप्रकाश ने साफ मना कर दिया कि वह आज से आजीवन खाना नहीं खाएगा। वह बोला कि बिना कोई काम किये रोटियाँ तोड़ना चोरी करने जैसा है।

बेटे के मुख से इतना सुनना था कि बाप ने जूता निकाला। माँ ने बेटे का यह कहते हुए बचाव किया कि यह घर है कोई सदन-वदन नहीं है। सुदामा को भी अचानक ध्यान आया कि बेटे के पैरों में भी उसी साइज के जूते हैं। उसने तुरन्त जूता और विचार दोनों वापस ले लिये।

सुदामा ने बेटे को समझाया, "बेटे, भोजन से क्या वैर? बिना काम किये भोजन करते रहना चोरी के समान नहीं है। ठंडे दिमाग से सोचा जाए तो चोरी का दर्जा काम से कहीं ऊँचा है। काम न करना चोरी नहीं है, बल्कि चोरी करना भी काम है।"

बुद्धिप्रकाश ने पिता से चोरी और काम की तुलनात्मक व्याख्या सुनी। वह समझ गया कि जिन चोरी और काम को वह विलोम समझता था, वे तो पर्याय हैं। उसने भरपेट भोजन किया और पिता की आज्ञा लेकर छत पर जाकर लेट गया।

रात घिर आई थी, लेकिन बुद्धिप्रकाश के नेत्रों से नींद हजारों प्रकाशवर्ष दूर थी। चन्द्रमा उसी तरह गायब था जैसे अखबारों में उसके रोल नम्बर। तारागण यों दिखाई दे रहे थे मानो आकाश ब्लास्ट की चपेट में आ गया हो और छर्रों से उसके शरीर पर असंख्य घाव हो गए हों। हवा पूरी तरह बन्द थी, जैसे सदा के लिए खिसक गई हो। सामने स्थिर खड़ा नीम का पेड़ यों लग रहा था, जैसे कोई विद्यार्थी फेल होकर एक ही कक्षा में अटक गया हो।

बुद्धिप्रकाश ने अपने अतीत का सिंहावलोकन किया। उसे खुद पर गुस्सा आया। मैं इतना कायर तो कभी न था। जिसने कभी गुरुजनों के सामने नमस्कार तक के लिए हाथ नहीं जोड़े, उलटे सामने पड़ने पर गुरुजनों ने ही उसके आगे हाथ जोड़े।

उसके मन में एग्जामिनरों के प्रति प्रतिशोध उबलने लगा। उसे मालूम था कि एक एग्जामिनर को जाँच कार्य के लिए प्रति उत्तर पुस्तिका चार रुपये मिलते हैं। वह सोचने लगा कि क्या कोई पढ़ा-लिखा शिक्षक मात्र चार रुपये के लिए इतना गिर सकता है कि किसी परीक्षार्थी को दस बार फेल कर दे। कोई उसे ऐसे गैरजिम्मेदार एग्जामिनरों के नाम-पते बता दे तो वह उसे चार हजार रुपये दे सकता है। क्या परीक्षा प्रणाली इतनी सड़ चुकी है कि कॉपी पूरी तरह खाली छोड़ आने पर पाँच-सात अंक साफ-सफाई के भी न दिये जाएँ?

बुद्धिप्रकाश को जीवन में पहली बार समय की क्षति का बोध हुआ। वह करवटें बदलता रहा। उसे उस नर्म गद्दे पर लेटकर भी नींद नहीं आ रही थी जो उसके कम्पाउंडर पिता ने स्वास्थ्य केन्द्र से रुई चुरा-चुराकर भरवाया था। अब तक चैन की नींद सोते रहने वाले ने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसे कभी अनिद्रा से चुनौती मिलेगी।

चिन्ता करते-करते उसने चिन्तन प्रारम्भ किया। वह अब तक दस में से नौ बार गणित और अंग्रेजी के अलावा बाकी सब विषयों में पास होता रहा था। वह जब भी डूबा है उसे गणित और अंग्रेजी ने ही डुबाया है। एक साल उसने पूरे समय गणित और अंग्रेजी की तैयारी की। नतीजा यह निकला कि शेष विषयों में रह गया। वह हनुमानजी पर क्रुद्ध हुआ, जिनका वह फुल टाइम भक्त था। आखिर क्यों मारुतिनन्दन ने उसके साथ इतनी बार चोट की? कभी वह जूते-चप्पल पहने तो उनके मन्दिर में नहीं चला गया? किसी दिन ऐसी भूल तो नहीं हो गई उससे कि लाल लँगोटी वाले के चरणों के बजाय चेहरे से सिंदूर खरोंचकर टीका लगा लिया हो? वह हनुमान चालीसा के किये पाठों के उच्चारण को लेकर शुद्धता-अशुद्धता का विचार करने लगा।

मैंने प्रतिवर्ष कड़ी मेहनत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। सम्भावित प्रश्नोत्तरों के नकल के कारतूस बनाकर ले गया। दुर्भाग्य से फ्लाइंग आ टपकी। सभी कारतूस निगलने पड़े। पेपर तो अनकिया रहा ही, सारे सवाल भी कई दिनों तक कई डॉक्टरों से हल कराने पड़े।

यों गलतियाँ मुझसे कम नहीं हुई हैं। जिस दिन गणित की परीक्षा थी। मैं घर से रामपुरी ले गया था, ताकि मेज पर खुला रखकर निर्भीकता से उत्तर लेखन कर सकूँ, लेकिन 'देखता हूँ अबके कोई कैसे फेल करता है' के ओवर कॉन्फिडेंस के चलते पासबुक अंग्रेजी की रख ले गया। पूरे तीन घंटे परीक्षा हॉल का नाप-जोख और वास्तु-परीक्षण करना पड़ा। रामपुरी खुले में खुला का खुला धरा रह गया। परीक्षा हॉल में सब ही-ही, खी-खी करने लगे। जो चीज डराने के लिए ले गया था, वह हँसाने के काम आई।

अगले वर्ष प्रण किया कि जो हो, गत बार वाली मिस्टेक नहीं दोहराऊँगा। जिस दिन गणित का प्रश्नपत्र था, याद कर गणित ही की पासबुक ले गया। याद दिलाने में पिताजी ने भी पर्याप्त मदद की। पर कहते हैं ना कि भाग्य में लिखे को विधाता भी नहीं टाल सकता, जबकि भाग्य में लिखता भी वही है। हे राम! इस बार रामपुरी ले जाना भूल गया।

अचानक उसे पढ़ाई-वढ़ाई को चिरतिलांजलि देकर राजनीति में कॅरियर बनाने का विचार सूझा। उसने तय किया कि जो हो जाए, किसी शिक्षा बोर्ड से पास का सर्टिफिकेट लेने के बजाय चुनाव आयुक्त से जीत का सर्टिफिकेट लेना है।

बुद्धिप्रकाश को कुछ खो देने से ज्यादा पा जाने की खुशी हुई। उसने अपनी तुलना कोलम्बस से की जो भारत की खोज करने निकला था और अमेरिका के तट से जा लगा।

गहरे कॅरियर सागर से उबरने का जोरदार आइडिया हाथ लगते ही बुद्धिप्रकाश गहरी नींद में डूब गया।

•

अनपढ़ नहीं, कुपढ़ लोग अपनी कुंठा और हीनभावना के कारण ज्ञान का मज़ाक उड़ाकर एक विचित्र संतुष्टि का अनुभव करते हैं।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस

एक अनुभव

लोग कहते हैं कि मैकाले ने इस देश को गुलाम बनाया और मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि मैकाले ही इस देश की आजादी का पिता है। अगर अंग्रेजों ने कोशिश न की होती शिक्षा देने की इस देश के लोगों को, यहाँ कभी क्रांति न होती। क्योंकि क्रांति आई शिक्षित लोगों से, अशिक्षित लोगों से नहीं, पंडित-पुरोहितों से नहीं, वेद के, उपनिषदों के ज्ञाताओं से नहीं–जो लोग पश्चिम से शिक्षा लेकर लौटे, जो वहाँ का थोड़ा रस लेकर लौटे।

सुभाष ने लिखा है कि जब मैं पहली दफा यूरोप पहुँचा और एक अंग्रेज चमार ने मेरे जूतों पर पालिश किया तो मेरे आनंद का ठिकाना न रहा। अब जिसने अपने जूतों पर अंग्रेज को पालिश करते देखा हो, वह वापिस आकर इस देश में अंग्रेज के जूतों पर पालिश करे, यह संभव नहीं। अब मुश्किल खड़ी हुई। मैकाले इस देश की आजादी का पिता है। उसी ने उपद्रव खड़ा करवाया। अगर मैकाले इस देश के लोगों को अंग्रेजी शिक्षा न देता, पढ़ने देता उन्हें संस्कृत मजे से और पाठशालाओं में रटने देता उनको गायत्री, कोई हर्जा होने वाला नहीं था। वे अपना जनेऊ लटकाये, अपनी घंटियाँ बजाते हुए शांति से अपने भजन-कीर्तन में लगे रहते। उसने लोगों को पश्चिम में जो स्वतंत्रता फली है उसका स्वाद दिलवा दिया। एक दफा स्वाद मिल गया, फिर अड़चन हो गई। अभी तुम देखते हो, ईरान में क्या हो रहा है? ईरान के सम्राट को जो परेशानी झेलनी पड़ रही है वह उसके खुद ही के कारण। ईरान अकेला मुसलमान देश है जहाँ शिक्षा का ठीक से व्यापक विस्तार हुआ है और ईरान के शहंशाह ने शिक्षा पर बड़ा जोर दिया। ईरान समृद्ध है, शिक्षित है–सारे मुसलमान देशों में! और यही नुकसान की बात हो गई। अब वे ही शिक्षित लोग और समृद्ध लोग अब चुप नहीं रहना चाहते; अब वे कहते हैं, हमें हक भी दो, अब हमें प्रजातंत्र चाहिए; अब हम राज्य करें, इसका भी हमें मौका दो।...

•

कृष्ण का लोकतंत्र

कृष्ण का जन्म ही संकीर्णता और दमन के विरुद्ध स्वतंत्रता का उद्घोष है। यह उद्घोष जेल में पड़े अपने माता-पिता की स्वतंत्रता का है और कंस के अत्याचार से पीड़ित मथुरा और गोकुलवासियों की स्वतंत्रता का है। वे जैसे जैसे बड़े होते हैं वैसे वैसे न सिर्फ गोकुलवासियों में प्रेम और स्वतंत्रता की भावना भरते हैं बल्कि गोवंश से लेकर गोवर्धन तक की स्वतंत्रता का अर्थ समझाते हैं। वे स्त्रियों की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं तो पशु पक्षियों की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। कृष्ण दरअसल अपने भक्त नहीं पैदा करते बल्कि सखा पैदा करते हैं। इसी सख्य भाव की तलाश लोकतंत्र के बंधुत्व की स्थापना है।

एक कविता

मेरी नानी

भारती मिश्र

(संपादन सहयोग : 'विश्वा')

ईश्वर सी निर्दोष मेरी नानी
कल तक हमारा रही सहारा
आज हुई कहानी
फूलों सी खुशबू भरी
सावन की झड़ी सी हरी-हरी
ईश्वर का सा सौंदर्य और सादगी
उसी का प्रतिरूप उसकी बंदगी
न कोई शिकवा न कोई शिकायत
प्रभु का स्मरण
उसी के स्मरण की आदत
मोक्ष तो उन्हें जीते-जी मिला
कोई दिल नहीं जो उनसे नहीं मिला
ईश्वर के अलावा किसी से डर नहीं
गीता का ज्ञान जीवंत
ईश्वर का घर उनके लिए हर कहीं
सामने वाला मंदिर,
पर मंदिर की मूरत उनके दिल में बसी
धैर्य की मूरत
आत्मानुशासन की लगाम कसी
दर्द दैहिक है आत्मा अमर
यह ज्ञान उन्हें था
सदा हम सबके साथ रहेंगी
ये उन्हें भान था
मेरी नानी
हमारे मन की रानी
सुन्दर प्यारी चंपा की कली
आत्मा-परमात्मा सी स्वच्छ भली
हम सब में समाई हैं
हम सब उनकी परछाँई हैं
हम उन सा बनकर
निर्भय रहें ईश्वर से तनकर मिलें
उन सा सुन्दर जीवन हो
अपना निर्दोष मन हो
हम उनके सच्चे बच्चे बनें
सफल रहें जीवन में उनकी तरह अच्छे बनें
उन सा बनकर
निर्भय रहें ईश्वर से तनकर मिलें

•

भगत सिंह के ग़द्दार और तरफ़दार

सुसंस्कृति परिहार
लेखिका और एक्टिविस्ट

अंग्रेजी राज में एक ऐसे जज भी हुए जिन्होंने भगत सिंह को फांसी की सजा दिलाना कबूल नहीं किया और निर्णय सुनाने से पहले अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

वे थे जस्टिस सैय्यद आगा हैदर जिन्होंने "शहीद भगत सिंह" को "फांसी नहीं लिखी", बल्कि "अपना इस्तीफा लिख दिया" था इतिहास बताता है कि मुसलमान सब्र रखने के साथ साथ इंसाफ परस्त भी हैं।

जस्टिस सैयद आगा हैदर का जन्म सन् 1876 में सहारनपुर के एक संपन्न सैय्यद परिवार में हुआ था। सन् 1904 में उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत आरंभ की तथा सन् 1925 में वे लाहौर हाई कोर्ट में जज नियुक्त हुए।

जस्टिस आग़ा हैदर यह नाम इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने भगतसिंह और उनके साथियों सुखदेव और राजगुरू को सज़ा से बचाने के लिए गवाहों के बयानों और सुबूतों की बारीकी से पड़ताल की थी। मुलज़िमों से जस्टिस आग़ा हैदर साहब की यह हमदर्दी देखते हुए कहा जाता है, अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें इस मुक़दमे की सुनवाई से हटा दिया था। जबकि सच यह है कि वे अंग्रेज जजों के दबाव में नहीं आए थे और अपना इस्तीफा सौंप दिया था।

फिर भगत सिंह को फांसी की सजा क्यों हुई कुछ इतिहासकार लिखते हैं, कि भगत सिंह के खिलाफ गवाही देने वाले दो व्यक्ति थे जब दिल्ली में भगत सिंह पर अंग्रेजों की अदालत में असेंबली में बम फेंकने का मुकदमा चला तो उनके साथी बटुकेश्वर दत्त के खिलाफ शोभा सिंह ने गवाही दी और दूसरा गवाह था शादी लाल।

शोभा सिंह एक बिल्डर थे। शोभा सिंह साल 1939 में पंजाब चैंबर ऑफ़ कॉमर्स के अध्यक्ष चुने गए थे। वे राष्ट्रमंडल संबंध विभाग और विदेश मामलों की समिति के सदस्य थे उनके कार्यकाल में बोर्ड ऑफ़ इंडस्ट्रियल एंड साइंटिफ़िक रिसर्च की स्थापना हुई थी। उन्होंने भारत-जापान व्यापार समझौता किया था।

जबकि सर शादी लाल एक सामाजिक-राजनीतिक नेता थे। सर शादी लाल पंजाब हिंदू सभा के एक नेता थे। वे 20वीं सदी की शुरुआत में पंजाब में हिंदू हितों की वकालत करते थे उनके कार्यो का असर न्यायिक क्षेत्र पर भी पड़ा भगत सिंह के मुकदमे में अभियोजन पक्ष के गवाह के तौर पर उन्होंने गवाही दी थी उनकी गवाही ने भगत सिंह को दोषी ठहराए जाने और फांसी की सज़ा पाने में अहम भूमिका निभाई।

विदित हो इन दोनों को वतन से की गई गद्दारी के लिए अंग्रेज़ों से, न सिर्फ सर की उपाधि मिली बल्कि और भी बहुत ईनाम मिला था। शोभा सिंह को दिल्ली में बेशुमार दौलत अंग्रेजों से मिली थी आज कनॉट प्लेस में शोभा सिंह के स्कूल में कतार लगती है बच्चों को प्रवेश तक नहीं मिलता है।

शादी लाल को बागपत के नजदीक अपार संपत्ति मिली थी आज भी शामली में शादी लाल के वंशजों के पास चीनी मिल और शराब कारखाना है सर शादीलाल और सर शोभा सिंह, भारतीय जनता की नजरों में सदा घृणा के पात्र थे और अब तक हैं।

लेकिन शादी लाल को गाँव वालों का ऐसा तिरस्कार झेलना पड़ा कि उसके मरने पर किसी भी दुकानदार ने अपनी दुकान से कफन का कपड़ा तक नहीं दिया। शादी लाल के लड़के उसका कफ़न दिल्ली से खरीद कर लाए तब जाकर उसका अंतिम संस्कार हो पाया था।

जस्टिस आगा हैदर अंग्रेजी हुकूमत में जज थे जिन पर अंग्रेजी हुकूमत ने अपना दबाव बना कर भगत सिंह को फाँसी की सज़ा देने का हुक़्म दिया मगर उन्होंने उस दबाव को नकारते हुए अपना इस्तीफा ही दे दिया जिसके बाद जज शादी लाल ने भगत सिंह और साथियों को फाँसी लिखकर बहुत नाम कमाया।

वस्तुत: भगत सिंह और उनके साथियों को सज़ा मुख्य जज जी सी हिल्टन के अध्यक्षता वाले एक ट्रिब्यूनल द्वारा दी गई थी। जिसका गठन गवर्नर जनरल लार्ड इरविन ने किया था।

ट्रिब्यूनल में सिर्फ आगा हैदर अकेले भारतीय थे और बाकी सभी जज अंग्रेज़ थे। जब आग़ा हैदर को फांसी देने वाले दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था तो उन्होंने हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया और अपने पद से इस्तीफा दे दिया। बाद में सर शादी लाल नामक जज ने हस्ताक्षर बिना आपत्ति के कर दिए। इन दोनों देशद्रोही हिंदुओं की वजह से भगत सिंह अपने दो साथियों सहित शहादत को समर्पित हुए जबकि सैयद हैदर आगा शहीदों के साथ अजर अमर हो गए।

यहाँ हमें जस्टिस खलीलुर्रहमान रमदे जी का भी शुक्रगुजार होना चाहिए, जिनकी बदौलत भारत को शहीद भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव पर अंग्रेजों के जमाने में चले मुकदमे के ट्रायल की कॉपी मिल सकी थी। फाँसी देने संबंधित कई चौंकाने वाले तथ्य भी सामने आए थे। जो देश के ग़द्दारों के नाम उजागर करते हैं।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के सदस्य एडवोकेट आसिफ़ अली ने भगत सिंह और साथियों के पक्ष में अपील लगाकर अंग्रेजों से अदालत में खुलकर बहसबाजी की थी। जबकि भगत सिंह के ख़िलाफ़ केस लड़ने वाले वकील राय बहादुर सूरज नारायण थे। वे अभियोजन पक्ष के वकील थे।

भगत सिंह की शहादत दिवस पर अपने आज़ादी के इतिहास को हम सभी को जानना चाहिए। •

(वर्ष 2025 कई मुख्य हिन्दी साहित्यकारों का जन्मशती वर्ष है जिनमें मुख्य हैं– श्रीलाल शुक्ल, अमरकांत, कृष्णा सोबती, नीरज और मोहन राकेश। चूंकि विश्वा में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त साहित्यकारों का एक स्तम्भ पहले से जारी है। इसलिए यहाँ केवल नीरज और मोहन राकेश को ही स्मरण करते हुए हम आदरांजलि पेश कर रहे हैं क्योंकि शेष तीन ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हैं। इसलिए उनके बारे में आलेख यथासमय पाठकों को उपलब्ध होंगे)

मोहन राकेश : बहुमुखी मौलिक प्रतिभा

(8 जनवरी 1925 - 3 दिसम्बर, 1972) हिन्दी की 'नई कहानी' आन्दोलन के सशक्त कहानीकार थे। 'आषाढ़ का एक दिन', 'आधे अधूरे' और लहरों के राजहंस के रचनाकार। 'संगीत नाटक अकादमी' से सम्मानित।

मोहन राकेश मूलतः एक सिंधी परिवार से थे। उनके पिता कर्मचन्द बहुत पहले सिंध से पंजाब आ गए थे। पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेज़ी में एम० ए० किया। जीविकोपार्जन के लिए अध्यापन किया। कुछ वर्षो तक 'सारिका' के संपादक भी रहे। 3 दिसम्बर 1972 को नयी दिल्ली में आकस्मिक निधन। वे हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार हैं। समाज के संवेदनशील व्यक्ति और समय के प्रवाह से एक अनुभूति क्षण चुनकर उन दोनों के सार्थक सम्बन्ध को खोज निकालना, राकेश की कहानियों की विषय-वस्तु है। मोहन राकेश की डायरी हिंदी में इस विधा की सबसे सुंदर कृतियों में एक मानी जाती है।

प्रमुख भारतीय निर्देशकों इब्राहीम अलकाजी, ओम शिवपुरी, अरविन्द गौड़, श्यामानन्द जालान, राम गोपाल बजाज और दिनेश ठाकुर ने मोहन राकेश के नाटकों का निर्देशन किया।

गद्य की विभिन्न विधाओं में उनकी दो दर्जन पुस्तकें उपलब्ध हैं।

इतिहास में स्मृति के साथ-साथ 'विस्मृति' भी ज़रूरी है ताकि आप सहज होकर आगे बढ़ सकें। वरना जीवन दु:स्वप्नों के दुश्चक्र में फँसा रह जाएगा। स्वतंत्रता सेनानियों ने विभाजन विभीषिका दिवस नहीं, स्वतंत्रता दिवस मनाने पर ज़ोर दिया तो यह मतलब नहीं कि वे उस विभीषका के दर्द से अपरिचित थे। वे इतिहास से सबक़ लेते हुए ऐसी नीति पर चलना चाहते थे कि दोबारा ऐसी विभीषिका न झेलनी पड़े। इसलिए उन्होंने भाईचारे, स्वतंत्रता और समता को संविधान का मूल बनाया।

हिन्दी कविता के अश्वघोष : गोपालदास नीरज

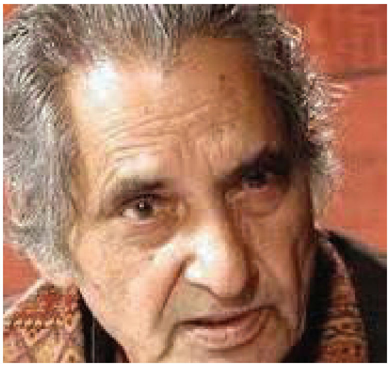

(4 जनवरी 1925 उत्तरप्रदेश के इटावा जिले में जन्म) और निधन – 19 जुलाई 2018), हिन्दी साहित्यकार, शिक्षक, एवं कवि सम्मेलनों के मंचों पर काव्य वाचक एवं फ़िल्मों के गीत लेखक थे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारत सरकार ने दो-दो बार सम्मानित किया, पहले पद्म श्री से, उसके बाद पद्म भूषण से। यही नहीं, फ़िल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए उन्हें लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला था।

मेधावी विद्यार्थी थे और एम ए तक की सभी परीक्षाएँ अच्छे अंकों से पास करने के बावजूद शुरु में उलटे-सीधे जॉब करने के बाद मेरठ और कानपुर में प्राध्यापकी लेकिन अंततः हिन्दी काव्य मंचों पर सक्रिय।

कविसम्मेलनों में अपार लोकप्रियता के चलते नीरज को बम्बई के फिल्म जगत ने गीतकार के रूप में नई उमर की नई फसल के गीत लिखने का निमन्त्रण दिया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पहली ही फ़िल्म में उनके लिखे कुछ गीत जैसे कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे और देखती ही रहो आज दर्पण न तुम, प्यार का यह मुहरत निकल जायेगा बेहद लोकप्रिय हुए जिसका परिणाम यह हुआ कि वे बम्बई में रहकर फ़िल्मों के लिए गीत लिखने लगे। फिल्मों में गीत लेखन का सिलसिला मेरा नाम जोकर, शर्मीली और प्रेम पुजारी जैसी अनेक चर्चित फिल्मों में कई वर्षों तक जारी रहा।

किन्तु बम्बई की ज़िन्दगी से भी उनका मन बहुत जल्द उचट गया और वे फिल्म नगरी को अलविदा कहकर फिर अलीगढ़ वापस लौट आये।

उनके 17 गीत संग्रह उपलब्ध हैं।

पद्म भूषण से सम्मानित कवि, गीतकार गोपालदास 'नीरज' ने दिल्ली के एम्स में 19 जुलाई 2018 की शाम लगभग 8 बजे अन्तिम सांस ली।

उत्सव-पर्व-प्रसंग : ललित निबंध

किसका ग्रहण और किसका पिंडदान?

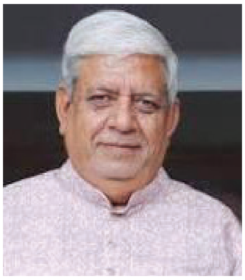

राकेश अचल

वरिष्ठ पत्रकार और लेखक

हम सनातनियों के पास हर काम के लिए अवसर ही अवसर और परंपराएँ ही परंपराएँ हैं। हम अपना शुभ, अशुभ खुद चुन सकते हैं लेकिन चुनते नहीं हैं। हमारे यहाँ योग–संयोग भी खूब बनते बिगड़ते हैं। ये अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। इसीलिए हम दुनिया के दूसरे हिस्सों से भिन्न हैं।

भारत में आज से पितृपक्ष शुरू हो गया है। पितृपक्ष को कोई श्राद्धपक्ष कहता है तो कोई कड़वे दिन। कोई महालय पक्ष कहता है तो कोई अपर पक्ष कहता है। हमारे यहाँ कनागत कहते हैं तो कहीं जितिया और सोलह श्राद्ध भी कहा जाता है। इसे कुआर या आश्विन के कृष्णपक्ष के रूप में भी जाना जाता है। पितृपक्ष का नाम एक विधान, एक निशान या एक देश, एक चुनाव जैसा नहीं किया जा सकता।

पितृपक्ष की तरह दुनिया के हर देश में कोई न कोई आयोजन होता है। चीन में पितृपक्ष की तरह चिंग मिंग उत्सव या टोंब स्वीपिंग डे मनाया जाता है। ये हर साल अप्रैल में मनाया जाता है। लोग अपने पूर्वजों की कब्र साफ करते हैं, भोजन, फूल और कागज़ की बनी वस्तुएँ चढ़ाते हैं। यह पितृपक्ष जैसा ही है, बस वहाँ कब्रों पर जाकर श्रद्धांजलि दी जाती है।

जापान में पूर्वजों के लिए ओबोन उत्सव होता है। ये अगस्त में मनाया जाता है। मान्यता है कि इन दिनों पूर्वजों की आत्माएँ घर आती हैं। लोग दीपक जलाते हैं, नृत्य (बोन ओडोरी) करते हैं और मंदिरों में पूजा करते हैं।

कोरिया में पितृपक्ष का नाम चुसोक है। ये सितंबर-अक्टूबर में होता है। इसे 'हार्वेस्ट फेस्टिवल' भी कहते हैं। लोग अपने पूर्वजों को भोजन अर्पित करते हैं और परिवार मिलकर उनकी याद में अनुष्ठान करते हैं। मैक्सिको में इसे डे ऑफ द डेड कहा जाता है ये 1–2 नवंबर को मनाया जाता है। लोग कब्रों को सजाते हैं, मोमबत्तियाँ जलाते हैं, रंग-बिरंगे खोपड़ी के प्रतीक और फूलों से सजावट करते हैं। यह बहुत रंगीन और उत्सव जैसा माहौल होता है।

फिलीपींस वाले अरो नग मगा पटाय के रूप में अपने पूर्वजों को याद करते हैं। यह 1 नवंबर को मनाया जाता है। परिवार कब्रिस्तान जाते हैं, मोमबत्तियाँ जलाते हैं और पिकनिक जैसा माहौल बनाकर पूर्वजों को याद करते हैं। मिस्र (प्राचीन काल में) 'फेस्टिवल ऑफ द डेड' मनाया जाता था। मृतकों की आत्मा को संतुष्ट करने के लिए भोजन और भेंट दी जाती थी। ईसाई परंपरा में इसे ऑल सेंट्स डे और ऑल सोल्स डे कहते हैं। इस्लाम वाले शबे बारात मनाते हैं।

भारत में ये काम पूरे 15 दिन चलता है। भारत में पितृपक्ष (श्राद्ध पक्ष) हिंदू परंपरा में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह हर साल भाद्रपद मास की पूर्णिमा के अगले दिन (पितृपक्ष अमावस्या तक, लगभग 15 दिन) मनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वजों की आत्माओं का स्मरण और तर्पण करना है।

पितृपक्ष में श्राद्ध और तर्पण, पूर्वजों के नाम से जल, तिल और पिंडदान (चावल के गोले) अर्पित किए जाते हैं। यह प्रायः नदी, तालाब या किसी पवित्र जल स्थल पर किया जाता है। भोजन अर्पण, पितरों को भोजन समर्पित किया जाता है, जिसे बाद में ब्राह्मणों, पंडितों या जरूरतमंदों को खिलाया जाता है। भोजन में खासतौर पर खीर, पूड़ी, दाल, कद्दू, चावल, घी आदि बनाए जाते हैं। दान-पुण्य कपड़े, अनाज, सोना-चांदी, पात्र, और दक्षिणा का दान किया जाता है।

मान्यता है कि यह पितरों को शांति और परिवार को आशीर्वाद देता है। पितृपक्ष में पूर्वजों का आह्वान, श्राद्ध करते समय 'पितृ देवताओं' और तीन पीढ़ियों तक के पूर्वजों (पिता, दादा, परदादा आदि) को स्मरण किया जाता है। कभी-कभी मातृ पक्ष के लोग भी शामिल किए जाते हैं। इसके लिए व्रत और नियम हैं। श्राद्ध करने वाला (कर्मकांडी व्यक्ति) उस दिन सात्विक आहार लेता है। पितृपक्ष में शुभ कार्य (जैसे शादी, गृह प्रवेश) नहीं किए जाते।

पितृपक्ष का अंतिम दिन सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इसे पितृ अमावस्या या सर्वपितृ अमावस्या भी कहते हैं। इस दिन सभी पितरों (जिनका श्राद्ध तिथि ज्ञात हो या न हो) का सामूहिक श्राद्ध किया जाता है। ये सब हम पूर्वजों को मोक्ष के लिए करते हैं। और जब थक जाते हैं तो गयाजी जाकर पिंडदान और तिलांजलि देकर पितृपक्ष मनाने से मुक्त हो जाते हैं।

रामचरित मानस में श्रीराम ने अपने पिता जनक का ही नहीं बल्कि गीधराज जटायु का भी पिंडदान किया था। लेकिन मोक्ष की लालसा हम जीवितों में भी है। सगुणोपासक मोक्ष नहीं लेते। रामचरित मानस में कहा गया है कि–

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥

बहरहाल मेरा कहना है कि हमें न मोक्ष की कामना करनी चाहिए और न वैतरणी पार करने की फिक्र करनी चाहिए। हमारे पूर्वज तो तभी खुश हो सकते हैं उन्हे तभी मोक्ष मिल सकता है जब हम घृणा का, ईर्ष्या का, सांप्रदायिकता का, वैमनस्य का, संकीर्णता का, कटुता का, कट्टरता का पिंडदान कर दें। इन सबको तिलांजलि दे दें। हमारे पूर्वज ऊपर से जब नीचे देखते हैं तो देश-दुनिया की दुर्दशा देखकर द्रवित हो जाते होंगे। हमारे पूर्वज असंख्य हैं जिन्होने इस देश को आजाद कराने में 1947 से पहले भी शहादतें दीं और बाद में भी। ये बात मुमकिन है आपको कड़वे दिनों की तरह कड़वी लगें लेकिन इसकी जरूरत है। जांच कर देखिए। देश के लोकतंत्र को राहु-केतु से बचाना, मुक्ति दिलाना ही पितृ सेवा है। आज का चंद्रग्रहण यही संदेश देता है। •

पताकाएँ

सीमा सिंह

(2024 का मलखान सिंह सीसोदिया युवा कविता सम्मान)

पूस की रातों में शीत ज़्यादा है कि कोहरा
कहा नहीं जा सकता
पर हवाओं में कुछ अलग ही गरमी है
कुत्ते लैम्प पोस्ट के नीचे ठिठुरते हैं
एक पीली रोशनी तारी है अंधेरे में
    दिन भर एक ही तरह की आवाज़ें पीछा करती हैं
    झंडे इमारतों से निकल सड़कों पर आ गये हैं
    पताकाएँ लहरा रही हैं आकाश में
    विचारधारा का कोई मतलब नहीं रहा अब
    पॉलिटिक्स भी तय करके क्या होगा भला
    एक ही रंग मल दिया गया है शहर के बदन पर
    जहाँ जुलूस हैं, नारे हैं, भीड़ है अनियंत्रित
मैं खोजती हूँ शांत दोपहरों का अमलतास
सड़कों पर उन्मुक्त रातें
और खाली मैदानों पर दूर तक हरियाली
अपनी आँखों को छुपा कहाँ ले जाऊँ भला
पागलपन इस कदर हावी है कि अपना ही घर
मुझे विरोधी करार देता है
जबकि सभी नियमों का पालन करने वाली
एक आम नागरिक से ज़्यादा मेरी हैसियत कुछ नहीं
फिर भी मेरी खोज में लगी है एक वैचारिक सत्ता
    बहुत जागी हुई रातों की कहानी है मेरे पास
    नींद दु:स्वप्नों से भरी हुई
    जो आधी रात टूटती है एक ही खटके से
    मेरी कहानी में किसी को दिलचस्पी नहीं
    कि वहां नहीं है कोई देवता जिसकी प्रतिष्ठा की जानी है
    उस कहानी का कथावाचक मारा जा चुका है
    अब आप चाहे तो अपनी धार्मिक पताकाएँ फहरा सकते हैं वहाँ!

एक संस्मरण : अल्बर्ट आइंस्टीन की टेबल

प्रस्तुति : रंजन शर्मा

अल्बर्ट आइंस्टीन की मृत्यु के दिन, जब अन्य पत्रकार प्रिंसटन अस्पताल की ओर भागे, तो राल्फ मॉर्स नाम के एक फ़ोटोग्राफ़र ने अलग रास्ता चुना। उन्होंने अस्पताल जाने के बजाय आइंस्टीन के दफ़्तर का रुख किया और इमारत के सुपरिटेंडेंट को एक बोतल स्कॉच देकर अंदर जाने की अनुमति हासिल की। वहाँ पहुँचकर उन्होंने आइंस्टीन की मेज़ की तस्वीरें खींचीं– वह मेज़ जिस पर कुछ ही घंटे पहले तक एक महान दिमाग़ काम कर रहा था।

18 अप्रैल 1955 को 76 वर्ष की आयु में अल्बर्ट आइंस्टीन का निधन हुआ। जैसे ही यह ख़बर फैली, पत्रकार और फ़ोटोग्राफ़र प्रिंसटन अस्पताल की ओर दौड़े, जहाँ आइंस्टीन ने अपने अंतिम घंटे बिताए थे। लेकिन लाइफ़ मैगज़ीन के फ़ोटोग्राफ़र राल्फ मॉर्स ने कुछ अलग सोचा। उन्हें लगा कि प्रिंसटन यूनिवर्सिटी में आइंस्टीन का दफ़्तर ही शायद उनके जीवन की सच्ची झलक दिखा सके। एक बोतल स्कॉच के बदले सुपरिटेंडेंट से इजाज़त लेकर वे अंदर पहुँचे और वहाँ उन्होंने बेहद भावुक कर देने वाली तस्वीरें उतारीं–आइंस्टीन की काग़ज़ों, जर्नल्स और नोट्स से भरी मेज़, किताबों की अलमारियाँ और समीकरणों से भरा ब्लैकबोर्ड–सब कुछ समय में थमा हुआ, ठीक उनकी मृत्यु के कुछ घंटों बाद।

वह मेज़ काग़ज़ों, जर्नल्स और नोट्स से अटी पड़ी थी–मानो यह दिखा रही हो कि उनका दिमाग़ आख़िरी साँस तक काम करता रहा। ब्लैकबोर्ड पर लिखे समीकरण गवाही दे रहे थे कि आइंस्टीन अपनी अंतिम समस्याओं से जूझ रहे थे। ये तस्वीरें सिर्फ़ ऐतिहासिक महत्व के कारण ही मशहूर नहीं हुईं, बल्कि इसलिए भी क्योंकि उन्होंने यह एहसास दिलाया कि महान प्रतिभा अक्सर अव्यवस्था से जन्म लेती है।

मज़ेदार तथ्य: आइंस्टीन ने एक बार कहा था–

"अगर बिखरी हुई मेज़ बिखरे हुए दिमाग़ की निशानी है, तो खाली मेज़ किस चीज़ की निशानी है?"

यही वजह है कि उनके दफ़्तर की यह अंतिम तस्वीर उनके जीवन का सबसे सटीक चित्र बन गई। •

भारतीय रंगमंच के महर्षि रतन थियम : एक श्रद्धांजलि

ओंकारेश्वर पांडे
प्रसिद्ध लेखक, संपादक, रंगकर्मी

(20 जनवरी 1948 – 23 जुलाई 2025)

(मणिपुर के एक भारतीय नाटककार, रंगमंच निर्देशक और शिक्षक, के एन पणिक्कर, बी वी कारंत, हबीब तनवीर, बंसी कौल और जब्बार पटेल जैसे दिग्गजों के साथ, भारतीय रंगमंच में उपनिवेशवाद के उन्मूलन के लिए स्वतंत्रता के बाद के 'थिएटर ऑफ़ रूट्स' आंदोलन के एक प्रमुख व्यक्तित्व)

मानवीय अस्तित्व के विराट रंगमंच पर आत्माओं का आवागमन एक सनातन सत्य है पर इतिहास के पन्ने उन्हीं को स्मरण रखते हैं जो अपने पीछे एक ऐसी सृजनात्मक छाप छोड़ जाते हैं जो काल के प्रवाह को अर्थ देती है।

रतन थियम ऐसे ही एक विरल सर्जक थे, जिन्होंने अपनी अदम्य प्रतिभा से न केवल भारतीय बल्कि वैश्विक रंगमंच के इतिहास में एक स्वर्णिम और अमिट अध्याय जोड़ दिया।

मानव आत्मा की खोज में रतन थियम ने रंगमंच को पवित्र प्रयोगशाला की तरह बनाया। मणिपुरी लोकपारंपरिकता, वैश्विक सौंदर्यबोध और राजनीतिक आक्रोश का समन्वय उनके मंच पर एक असाधारण यज्ञवत् अनुभूति देता था। 23 जुलाई 2025 को इम्फाल के रिम्स अस्पताल में उनका प्रस्थान रंगमंच जगत के लिए एक अप्राप्य क्षति है।

रतन थियम मात्र एक उत्कृष्ट रंगकर्मी, दूरदर्शी नाटककार, या निर्देशक भर नहीं थे; वे एक रंग-वैज्ञानिक, एक सिद्धहस्त रसायनज्ञ और विराट सांस्कृतिक प्राणपुरुष थे, जिन्होंने प्राचीन और समकालीन,

स्थानीय और सार्वभौमिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक तत्वों का एक ऐसा अद्भुत मिश्रण तैयार किया जिसने रंगमंच को एक पवित्र प्रयोगशाला और आनंद की अनुभूति का स्थल बना दिया। उनका मंच एक यज्ञशाला थी, जहाँ मणिपुर की सांस्कृतिक परंपराएँ, वैश्विक सौंदर्यबोध और मानवीय अनुभवों का कच्चा माल एक अनुपम सत्य और सौंदर्य में परिवर्तित होता था। उनकी कला ने मणिपुर की आत्मा को वैश्विक कैनवास पर इस प्रकार उकेरा कि वह सांस्कृतिक एकता की एक जीवंत मिसाल बन गयी है।

मणिपुर में व्याप्त मैतेई-कुकी संघर्ष से वे अत्यंत व्यथित थे और उन्होंने अपनी कला के माध्यम से शांति का मार्ग प्रशस्त किया। अशांत मणिपुर की इस पीड़ा को झेलने वाले रतन थियम ने अपने रंगमंच के जरिए ही शांति का उद्घोष किया। वे कहते थे, "रंगमंच हमारी आत्मा है।" रचनात्मकता के हथियारों से युद्ध के विरुद्ध युद्ध लड़ने वाला यह अदम्य योद्धा आज हमारे बीच नहीं है, परन्तु उसकी लड़ाई की गूंज उसकी कृतियों में सदैव जीवित रहेगी। उनके नाटक मणिपुर के उथल-पुथल भरे सामाजिक-राजनैतिक परिवेश के दर्पण थे, जो जातीय संघर्षों, विद्रोहों और युद्ध की विभीषिका को निर्ममता से प्रतिबिंबित करते थे।

उनका मानना था, "युद्ध बच्चों के भविष्य को छीन लेता है। यह महिलाओं के जीवन को तहस-नहस कर देता है, उन्हें एक भयावह स्थिति में धकेल देता है। यह सब कुछ कभी भी सामान्य नहीं है।" इसी असमानता और हिंसा के विरुद्ध उनका रंगमंच एक सशक्त हथियार था, जो कला, सहानुभूति और अथक सृजनशीलता से सज्जित था।

20 जनवरी 1948 को इम्फाल में जन्मे थियम ने एनएसडी (1974) से नाट्यशास्त्र की शिक्षा के बाद 1976 में कोरस रिपर्टरी थिएटर की स्थापना कर मणिपुर में एक प्रयोगशाला का रूप दिया।

महाभारत त्रयी

थियम का रंगमंच औपनिवेशिक प्रभावों के विरुद्ध एक सांस्कृतिक विद्रोह भी था, जो भारत में रंगमंच की मूल जड़ों की तलाश करता था। "रंगमंच की जड़ों" के आंदोलन के एक प्रमुख स्तंभ के रूप में, बी.वी. कारंत और के.एन. पाणिकर जैसे दिग्गजों के साथ, उन्होंने मणिपुर की नृत्य, संगीत और कथावाचन परंपराओं को पुनर्जीवित कर ऐसी कथाएँ गढ़ीं, जो सत्ता संरचनाओं और सामाजिक मानदंडों को ललकारती थीं। जीन एनौइल के 'एंटिगोने' के उनके रूपांतरण 'लेंगशोन्नेई' ने मणिपुर की राजनैतिक विफलताओं पर करारी चोट की, तो 'मैकबेथ' ने मानवीय महत्वाकांक्षा और त्रासदी की शाश्वतता को उजागर किया।

उन्हें मिले पुरस्कार और सम्मान–संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1987), पद्म श्री (1989), कालिदास सम्मान (1997), संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप (2012), और मणिपुर का लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड (2025) •

एक पत्र : ज्योतिर्मय

विवेकानंद का ईश्वर

(जो अपने गुरुभाइयों के नाम स्वामी विवेकानंद ने 1894 ई. में लिखा था।)

प्रिय भ्रातृवृंद,

इसके पहले मैंने तुम लोगों को एक पत्र लिखा है, किंतु समयाभाव से वह बहुत ही अधुरा रहा। राखाल एवं हरि ने लखनऊ से एक पत्र में लिखा था कि हिंदू समाचार-पत्र मेरी प्रशंसा कर रहे थे, और वे लोग बहुत ही खुश थे कि श्री रामकृष्ण के वार्षिकोत्सव के अवसर पर बीस हजार लोगों ने भोजन किया। इस देश में मैं बहुत कुछ कार्य और कर सकता था, किंतु ब्राह्मसमाजी एवं मिशनरी के लोग मेरे पीछे पड़े हुए हैं एवं भारतीय हिंदुओं ने भी मेरे लिए कुछ नहीं किया।

हमारी जाति से कोई भी आशा नहीं की जा सकती। किसी के मस्तिष्क में कोई मौलिक विचार जागृत नहीं होता, उसी एक चीथड़े से सब कोई चिपके हुए हैं– राम-कृष्ण परमहंस देव ऐसे थे और वैसे थे, वही लंबी-चौड़ी कहानी जो बेसिर-पैर की है। हाय भगवान! तुम लोग भी तो ऐसा कुछ करके दिखलाओं कि जिससे यह पता चले कि तुम लोगों में भी कुछ असाधारणता है– अन्यथा आज घंटा आया, तो कल बिगुल और परसों चवंर, आज खाट मिली, कल उसके पायों को चांदी से मढ़ा गया– आज खाने के लिए लोगों को खिचड़ी दी गयी और तुम लोगों ने दो हजार लंबी-चौड़ी कहानियाँ गढ़ीं– वही चक्र, गदा, शंख, पद्म– यह सब निरा पागलपन नहीं तो और क्या है?

अंग्रेजी में इसी को इम्बेसीलिटी (जन्मजात बुद्धि-दौर्बल्य) कहा जाता है। जिन लोगों के मस्तिष्क में इस प्रकार की ऊलजलूल बातों के सिवा और कुछ नहीं है, उन्हीं को जड़बुद्धि कहते हैं। घंटा दायीं ओर बजना चाहिए अथवा बायीं ओर, चंदन माथे पर लगना चाहिये या अन्यत्र कहीं, आरती दो बार उतारनी चाहिये या चार बार इन प्रश्नों को लेकर जो दिन-रात माथापच्ची किया करते हैं, उन्हीं का नाम भाग्यहीन है और इसीलिए हम लोग श्रीहीन तथा जूतों की ठोकर खाने वाले हो गये तथा पश्चिम के लोग जगद्विजयी... आलस्य तथा वैराग्य में आकाश-पाताल का अंतर है।

यदि भलाई चाहते हो, तो घंटा आदि को गंगाजी को सौंपकर साक्षात भगवान नारायण की– विराट और स्वराट की– मानव देहधारी प्रत्येक मनुष्य की पूजा में तत्पर हो। यह जगत भगवान का विराट रूप है, एवं उसकी पूजा का अर्थ है, उसकी सेवा। वास्तव में कर्म इसी का नाम है, निरर्थक विधि-उपासना के प्रपंच का नहीं। घंटे के बाद चंबर लेने का अथवा भात की थाली भगवान के सामने रखकर दस मिनिट बैठना चाहिये या आधा घंटा, इस प्रकार के विचार-विमर्श का नाम कर्म नहीं है, यह तो पागलपन है।

लाखों रुपये खर्च करके काशी तथा वृंदावन के मंदिरों के कपाट खुलते और बंद होते हैं। कहीं ठाकुरजी वस्त्र बदल रहे हैं, तो कहीं भोजन अथवा और कुछ कर रहे हैं, जिसका ठीक-ठीक तात्पर्य हम नहीं समझ पाते... किंतु दूसरी और जीवित ठाकुर भोजन तथा विद्या के बिना मरे जा रहे हैं। तुम लोगों में इन बातों को समझने तक की भी बुद्धि नहीं है, यह हमारे देश के लिए प्लेग के समान है, और पूरे देश में पागलों का अड्डा...

तुम लोग अग्नि की तरह चारों ओर फैल जाओ और उस विराट की उपासना का प्रचार करो– जो कि कभी हमारे देश में नहीं हुआ है। लोगों के साथ विवाद करने से काम न होगा, सबसे मिलकर चलना पड़ेगा...

गाँव-गाँव तथा घर-घर में जाकर भावों का प्रचार करो, तभी यथार्थ में कर्म का अनुष्ठान होगा, अन्यथा चुपचाप चारपाई पर पड़े रहना तथा बीच-बीच में घंटा हिलाना– स्पष्टता यह तो एक प्रकार का रोग-विशेष है... स्वतंत्र बनो, स्वतंत्र बुद्धि से काम लेना सीखो– अन्यथा अमुक तंत्र, वेद, पुराणादि सब कुछ तुम्हारी वाणी से अपने आप निस्सृत होंगे... यदि कुछ करके दिखा सको, एक वर्ष के अंदर यदि भारत के विभिन्न स्थलों में दो-चार हजार शिष्य बना सको, तब मैं तुम्हारी बहादुरी समझूँगा...

गाँव-गाँव तथा घर-घर में जाकर लोकहित एवं ऐसे कार्यों में आत्मविनियोग करो, जिससे कि जगत का कल्याण हो सके। चाहे अपने को नरक में ही क्यों न जाना पड़े, परंतु दूसरों की मुक्ति हो। मुझे अपनी मुक्ति की चिंता नहीं है। जब तुम अपने लिए सोचने लगोगे, तभी मानसिक अशांति आकर उपस्थित होगी। मेरे बच्चों, तुम्हें शांति की क्या आवश्यकता है? जब तुम सब कुछ छोड़ चुके हो? आओ, अब शांति तथा भक्ति की अभिलाषा को भी त्याग दो।

किसी प्रकार की चिंता अवशिष्ट न रहने पाये। स्वर्ग-नरक, भक्ति अथवा मुक्ति– किसी चीज की परवाह न करो। और जाओ, मेरे बच्चो, घर-घर जाकर भगवन्नाम का प्रचार करो। दूसरों की भलाई से ही अपनी भलाई होती है, अपनी मुक्ति तथा भक्ति भी दूसरों की मुक्ति तथा भक्ति से ही संभव है, अतः उसी में संलग्न हो जाओ, तन्मय रहो तथा उत्मत्त बनो। जैसे कि श्रीरामकृष्ण देव तुमसे प्रीति करते थे, मैं तुमसे प्रीति करता हूँ, आओ, वैसे ही तुम भी जगत से प्रीति करो। निम्नलिखित बातें ध्यान में रखो–

1. हम लोग सन्यासी हैं, भक्ति तथा भुक्ति-मुक्ति, सब हमारे लिए त्याज्य है।

2. जगत का कल्याण करना, प्राणिमात्र का कल्याण करना हमारा व्रत है, चाहे उससे मुक्ति मिले अथवा नरक, स्वीकार करो।

3. जगत के कल्याण के लिए श्रीरामकृष्ण परमहंस देव का आविर्भाव हुआ था। अपनी भावना के अनुसार उनको तुम मनुष्य, ईश्वर, अवतार जो कुछ कहना चाहो, कहो।

4. जो कोई उनको प्रणाम करेगा, तत्काल ही वह स्वर्ण बन जायेगा। उस संदेश को लेकर तुम घर-घर जाओ तो सही– देखोगे कि तुम्हारी सारी अशांति दूर हो गयी है। डरने की जरूरत नहीं– डरने का कारण ही कहां है? तुम्हारी कोई आकांक्षा तो है नहीं– अब तक तुमने उनके नाम तथा अपने चरित्र का जो प्रचार किया है, वह ठीक है, अब संघटित हो कर प्रचार करो, प्रभु तुम्हारे साथ है, डरने की कोई बात नहीं।

चाहे मैं मर जाऊँ या जीवित रहूँ, भारत लौटूँ या न लौटूँ तुम लोग प्रेम का प्रचार करते रहो, प्रेम जो बंधनरहित है। किंतु यद याद रखना– सन्निमित्ते वरं त्यगो विनाशे नियते सति– मृत्यु जब अवश्यंभावी है, तब सत्कार्य के लिए प्राण त्याग करना ही श्रेयस्कर है।

प्रेमपूर्वक तुम्हारा
विवेकानंद

गौहर रज़ा की किताब "मिथकों से विज्ञान तक"

मुशर्रफ़ अली

गौहर रज़ा की पुस्तक **"मिथकों से विज्ञान तक"** जिसे पेंगुईन ने प्रकाशित किया है एक विचारोत्तेजक और प्रेरणादायक रचना है, जो विज्ञान और समाज के बीच के जटिल रिश्ते को समझने का एक अनूठा प्रयास करती है। यह पुस्तक न केवल वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देती है, बल्कि सामाजिक मिथकों, अंधविश्वासों और गलत धारणाओं को चुनौती देकर पाठकों को तार्किक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती है। गौहर रज़ा ने विज्ञान के इतिहास और इसके सामाजिक प्रभावों को सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक उन मिथकों और कथाओं को उजागर करती है, जो समाज में वैज्ञानिक तथ्यों को ग्रहण करने में बाधा डालते हैं। रज़ा ने अपने वैज्ञानिक और कवि दोनों रूपों का उपयोग करते हुए, जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को आम जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

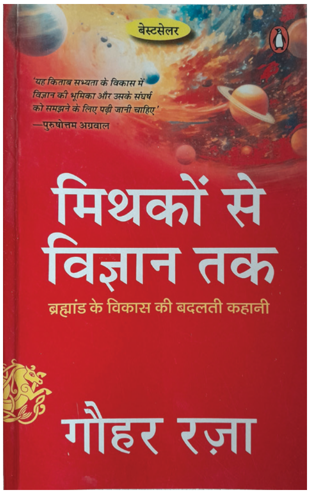

पुस्तक में भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, मान्यताओं का विश्लेषण किया है, और इन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखा गया है। गौहर रज़ा की लेखन शैली सरल, प्रवाहमयी और प्रभावशाली है। वे वैज्ञानिक तथ्यों को कथात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक बिना किसी तकनीकी जटिलता के विषय को समझ सकता है। उनकी काव्यात्मक पृष्ठभूमि इस पुस्तक में स्पष्ट झलकती है, जो इसे और आकर्षक बनाती है। उदाहरण के लिए, वे मिथकों को तोड़ने के लिए कहानियों और रोज़मर्रा के उदाहरणों का उपयोग करते हैं, जो पाठक को गहराई से सोचने पर मजबूर करते हैं। यह पुस्तक पाठकों को तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण है, जहाँ अंधविश्वास और मिथक अभी भी समाज के बड़े हिस्से को प्रभावित करते हैं। रज़ा ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को लिखा है, जिससे यह स्थानीय पाठकों के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। पुस्तक में कई रोचक और प्रासंगिक उदाहरण हैं, जो वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझाने में मदद करते हैं। ये उदाहरण पाठकों को विज्ञान के साथ जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह पुस्तक केवल सूचना देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक बदलाव और वैज्ञानिक चेतना को बढ़ावा देने की दिशा में एक कदम है।

पुस्तक का आरम्भ वह एक लम्बे सवाल से करते हैं जो बेहद महत्वपूर्ण है,

"इस कहानी के अंत में यह सवाल पूछना ज़रुरी हो गया है कि प्रकृति ने 13.799 बिलियन साल लगाकर हमें यानि इंसान को, क्यों पैदा किया, इंसान का दिमाग़ जो सृष्टि की सबसे खूबसूरत शै है, आखिर इसकी क्या ज़रूरत थी? ज़रूरी सही पर महज़ विज्ञान का सवाल नही है। यह सवाल तो हमें अलग अलग भी और मिलकर भी पूछना होगा कि क्या प्रकृति ने हमें इसलिए पैदा किया कि हम इस नन्ही सी गेंद पर, अपना कब्ज़ा जमाने के लिए खुद को देशों, जातियों, धर्मों, नस्लों, प्रांतों, भाषाओं में बांट लें और अपनी नन्ही सी जिंदगी में नफ़रत बोएँ और नफ़रत काटें? क्या हम इस नन्ही सी गेंद पर इसलिए पैदा हुए हैं कि इस गेंद के लिए खतरा बन जायें, इस गेंद के हर प्राणी के लिए खतरा बन जायें, ऐसे खतरनाक हथियार पैदा करें और ऐसे हथियारों के अंबार लगायें जो इस धरती को ही नष्ट कर दे, सृष्टि के ख़ज़ाने को इस तरह लूटें कि अगली नस्लों के लिए कुछ न बचे, ऐसा समाजिक ढांचा बनायें जिसमें एक प्रतिशत इंसानों के पास धरती की 90 प्रतिशत दौलत हो और 90 प्रतिशत मानवता रोटी को तरसती रहे। हमें पूछना होगा कि क्या सृष्टि के इस सफ़र को जारी रखना है या नहीं, हमें अमन और शांति के हक़ में अपने दिमाग़ का इस्तेमाल करना है या जंग हमारा लक्ष्य होगी। जिंदगी के छोटे-छोटे स्वार्थ पूरा करने की चाह में हम भूल जाते है कि सृष्टि ने मानवता के लिए एक और लक्ष्य भी चुना है, प्रकृति के रहस्यों को जानने समझने का लक्ष्य, विज्ञान इसी लक्ष्य की चाह में लगातार बढ़ते रहने का नाम है।"

हालांकि पुस्तक बहुत प्रभावशाली है, कुछ पाठकों को यह लग सकता है कि कुछ विषयों पर और गहराई से चर्चा की जा सकती थी। साथ ही, कुछ जटिल वैज्ञानिक अवधारणाएँ गैर-वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के पाठकों के लिए थोड़ी जटिल हो सकती हैं। फिर भी, रज़ा ने इसे यथासंभव सरल रखने का प्रयास किया है। "मिथकों से विज्ञान तक" एक ऐसी पुस्तक है, जो न केवल विज्ञान प्रेमियों के लिए, बल्कि उन सभी लोगों के लिए पढ़ने योग्य है, जो समाज में व्याप्त मिथकों और अंधविश्वासों को समझना और उनसे मुक्ति पाना चाहते हैं। गौहर रज़ा ने इस पुस्तक के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना को बढ़ावा देने का एक सराहनीय प्रयास किया है। यह पुस्तक विशेष रूप से विज्ञान में रुचि रखने वाले, सामाजिक सुधारक, शिक्षक और युवा पाठक, और शिक्षकों के लिए उपयोगी हो सकती है, जो समाज में तार्किक और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देना चाहते हैं। •

ग्राज़िया देलेद्दा : सार्डिनिया की वैश्विक कथाकार

डॉ. चारु सिंह

(साहित्य जीवन को दिशा देता है। विश्व के श्रेष्ठ मूल्य साहित्य से ही निसृत हैं। इन्हीं मूल्यों को धर्म और राजनीति का मार्गदर्शक होना चाहिए इसीलिए हमें समस्त विश्व के श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। चूँकि हमारे पाठक विशेषरूप से वैश्विक सोच वाले हैं अतः इस स्तम्भ में हम साहित्य का नोबल प्राप्त महिलाओं के साहित्य से उन्हें परिचित करवाना चाहते हैं। महिला लेखिकाओं के साहित्य से इसलिए कि वे वत्सल होती हैं। करुणा से ओतप्रोत। और करुणा के बिना यह सृष्टि कब तक बचेगी? -सं.)

ग्राज़िया मारिया कोज़िमा दामियाना देलेद्दा (1871–1936) आज भी इतालवी साहित्य की सबसे रहस्यमयी और प्रभावशाली हस्तियों में बनी हुई हैं। उन्होंने 1926 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार जीता। यह उन्नीसवीं सदी में सार्डिनिया के एक छोटे से कस्बे में जन्मी स्त्री की अपने पितृसत्तात्मक परिवेश से वैश्विक साहित्यिक पटल तक की यात्रा थी। वह इस सम्मान को पाने वाली पहली इतालवी महिला थीं और स्वीडन की सेल्मा लागर्लूफ के बाद विश्व की केवल दूसरी महिला। इतिहास के उस दौर में उनकी यह विजय न तो सहज थी और न हर जगह इसे पसंद ही किया गया। उनके समकालीन आलोचकों ने उनके साहित्यिक योगदान पर बहुत से सवाल खड़े किए। सेल्मा लागर्लूफ की ही तरह उनके नोबेल सम्मान पाने को लेकर भी राजनीतिक टिप्पणियाँ हुईं। इसके बावजूद उनके नोबल पुरस्कार प्राप्ति के इस शताब्दी वर्ष तक पाठकों ने जिस तरह उन्हें सराहा और अपनाया है, वह न केवल उनके साहित्य पर खड़े किए गए सवालों का उत्तर है बल्कि एक विधा के रूप में आलोचना के लैंगिक पूर्वाग्रह की ओर भी इशारा करता है।

उनकी रचनाएँ आज भी उनके असाधारण धैर्य और अटूट संकल्प की साक्षी बनकर खड़ी हैं। उन्हें पता था कि एक स्त्री के रूप में विवाह और मातृत्व जैसी जिम्मेदारियाँ ही उनके जीवन के केंद्र में रहेंगी। फिर भी उन्होंने हर दिन लिखते रहने का नियम बनाया और उसे निभाती चली गईं। उनके जीवनीकार बताते हैं कि बीमार होने पर भी वह हर दिन लिखती रहीं और चालीस से अधिक उपन्यास लिखे; कहानियाँ, नाटक और निबंध लिखे; लोककथाएँ संग्रहीत कीं और अनुवाद किए। यह सब उन्होंने अपने परिवार का विरोध सहते हुए और स्थानीय लोगों के हमले झेलते हुए किया। वे जिन विषयों पर लिख रही थीं उन्हें उनका समाज एक स्त्री की कलम से पढ़ने का आदी नहीं था। यह लेखन उन्होंने अपने समाज की सांस्कृतिक अपेक्षाओं के ख़िलाफ़ जाकर किया जो उन्हें चुप्पी के दायरे में सीमित करना चाहता था। उन्होंने लिखा, "मैं बहुत छोटी हूँ, आप जानते हैं... लेकिन मैं साहसी और निडर हूँ, एक दैत्य की तरह और बौद्धिक युद्धों से भयभीत नहीं होती।"

27 सितम्बर 1871 को जन्मी ग्राज़िया सार्डिनिया के एक सम्मानित बुर्ज़ुआ परिवार से आती थीं। सात संतानों में चौथी ग्राज़िया का बचपन उस सार्डिनिया में बीता जो कुछ वक्त पहले ही में इटली में शामिल हुआ था। यह द्वीप अब भी अलग-थलग और आर्थिक दृष्टि से अविकसित था। यहाँ एक ओर तो गहरे जमे हुए पितृसत्तात्मक सामंती मूल्य और ग़रीबी थी, दूसरी ओर यहाँ जीवंत ग्राम्यता, स्थानीय बोली की लोककथाओं, कहावतों और विश्वासों की प्रबल और बहुरंगी परंपराएँ भी मौजूद थीं। यह दोनों ही उनके साहित्य की विशिष्टता बने। देलेद्दा की मातृभाषा लोगुदोरेसे सार्दो थी। यह सार्डीनिया की प्रमुख बोलियों में से एक थी । बाद में जब उन्होंने अपना समूचा लेखन इतालवी में किया तो उस सीखी हुई भाषा में वे अपनी मातृभाषा की सहजता पिरोती रहीं। इस भाषा ने उनके साहित्य को वह धार दी जो केवल शहरी इतालवी में संभव न थी।

उनकी औपचारिक शिक्षा अत्यंत संक्षिप्त रही। उन्होंने प्राथमिक विद्यालय तक की पढ़ाई की। यह उस समय लड़कियों के लिए अनिवार्य न्यूनतम स्तर था और इतनी शिक्षा देने के लिए उनका परिवार विवश था। ग्यारह वर्ष की आयु में उन्हें विद्यालय से निकाल लिया गया। इसके बाद उनकी शिक्षा मुख्यतः स्वाध्याय पर आधारित रही। उन्होंने अपने पिता के पुस्तकालय से इतालवी, फ़्रांसीसी, रूसी तथा अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया।

तेरह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते देलेद्दा की पहली कहानी एक स्थानीय पत्रिका में प्रकाशित हुई। बड़ी पत्रिकाओं में छपना कोई आसान काम न था। उन्होंने अपने शुरुआती लेखन को जहाँ-तहाँ छपवाया। इसका बड़ा हिस्सा 1888 से 1889 के बीच ल'उल्तिमा मोदा नाम की एक फ़ैशन पत्रिका में भी प्रकाशित हुआ। 1890 में उनका पहला कहानी-संग्रह नेल्ल'अज़्ज़ुरो छपा। 1892 में पहला उपन्यास फियोरी दी सार्देन्या (सार्डीनिया के फूल) प्रकाशित हुआ।

ये शुरुआती रचनाएँ प्रायः भावुकता से भरी और पारंपरिक थीं। आलोचकों ने इन्हें मध्यवर्गीय पाठकों के हल्के-फुल्के मनोरंजन की कोटि में रखा किंतु नुओरो के स्थानीय समाज ने इन रचनाओं को घोर आपत्तिजनक माना। उनके बीच यह धारणा प्रबल थी कि एक युवती

का लेखन करना ही अनुचित है। देलेद्दा द्वारा कहानियों में सार्डिनिया के लोगों के अंतरंग जीवन के चित्रण को वहाँ के लोगों ने और भी आपत्तिजनक माना। उनकी साहित्यिक आकांक्षाओं को उनके अपने समाज ने दुस्साहसिक और शर्मनाक घोषित कर दिया। पर देलेद्दा रुकी नहीं। उन्होंने लिखना और छपना जारी रखा और आहिस्ता-आहिस्ता अपना एक विशिष्ट साहित्यिक स्वर विकसित करती रहीं।

अक्टूबर 1899 में उनकी भेंट पामिरो मादेसानी से हुई। वे वित्त मंत्रालय में एक सरकारी अधिकारी थे। केवल दो महीने बाद जनवरी 1900 में दोनों का विवाह संपन्न हुआ। शीघ्र ही वे रोम चले गए। यह प्राचीन शहर ताउम्र देलेद्दा का घर बना रहा। इस विवाह ने उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक स्थायित्व दिया लेकिन देलेद्दा ने लिखना नहीं छोड़ा। इसके विपरीत, उन्होंने अधिक अनुशासित दिनचर्या विकसित की। वे प्रातः देर से नाश्ता करतीं फिर गहन पठन में समय देतीं। दोपहर के भोजन और संक्षिप्त विश्राम के बाद पूरी दोपहर लिखा करतीं। यह अनुशासन उनके दो बेटों के जन्म के बाद भी अविचलित बना रहा। उनका पारिवारिक जीवन रोम की सामाजिक हलचल से जानबूझकर अलग रखा गया था। देलेद्दा ने सामाजिक आयोजनों से दूरी बनाए रखी और अपने परिवार और लिखने की मेज़ तक ही ख़ुद को सीमित कर लिया। इस तरह उन्होंने अपने लिए वह समय चुराया जिसे वे मातृत्व की भूमिका को निभाते हुए भी अपने साहित्यिक पेशेवर जीवन को रचने में लगा सकती थीं।

देलेद्दा की कृतियों को किसी एक साहित्यिक श्रेणी में बाँधना कठिन है। कुछ आलोचक उन्हें वेरिस्मो से जोड़ते हैं। वेरिस्मो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का एक इतालवी साहित्यिक आंदोलन था जो ग्रामीण और साधारण जीवन को कठोर यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करता था। ऐसे आलोचक उनके लेखन में आए ग्रामीण जीवन के चित्रण को सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। दूसरी तरह के आलोचक देलेद्दा के लेखन को शुद्ध यथार्थवाद मानने की बजाय उसे अत्यधिक भावुक, काव्यात्मक और मनोवैज्ञानिक कहते हैं जिसमें उनके अनुसार रोमांटिक और यहाँ तक कि डेकेडेंटिस्ट प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

सच तो यह है कि उनकी सार्डिनिया एक साथ ही यथार्थवादी और मिथकीय दोनों है। एक ओर वह कठोर सामंती, निर्धन और पितृसत्तात्मक भूमि है, तो दूसरी ओर ग़ैर ईसाई विश्वासों, पगान प्रतिध्वनियों और लोक-आध्यात्मिकताओं से भरा हुआ संसार भी। यहाँ कैथोलिक चर्च एक पूर्ण और अचूक सत्ता के रूप में नहीं है बल्कि दूसरी तमाम इंसानी संस्थाओं की तरह त्रुटिपूर्ण और अधूरी है। उनके पात्र एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ ईसाई कैथोलिक नैतिकता प्राचीन पगान आस्थाओं के साथ घुलमिल कर एक संकर आध्यात्मिकता निर्मित करती है। देलेद्दा के उपन्यास पितृसत्ता की पीड़ाओं को भी गहराई से उद्घाटित करते हैं। वे ऐसी स्त्रियों को अपनी बात कहने के लिए चुनती हैं जिनका भाग्य लगभग पूरी तरह उनकी देह, विवाह और पुरुषों की इच्छा पर निर्भर है। यौन हिंसा, गर्भधारण और मातृत्व उनके जीवन की सीमाएँ निर्धारित करते हैं। उनके पुरुष पात्र भी इस बंधन से मुक्त नहीं हैं। उनकी संवेदनशीलता और भावुकता को दुर्बलता के रूप में देखा जाता है जो उपहास का विषय बनती है। वे दिखाती हैं कि किस तरह समाज पुरुषों की कोमलता और भावनाएँ उनसे छीन लेता है और उनसे कठोरता और आत्म-संयम की अपेक्षा रखता है। देलेद्दा की सर्वश्रेष्ठ कृति कैन अल वेंटो (1913) को माना जाता है जिसे अंग्रेज़ी में "रीड्स इन द विंड" के नाम से अनूदित किया गया है।

1926 में ग्राज़िया देलेद्दा को साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। आधिकारिक प्रशस्ति में उनके लेखन की सराहना करते हुए कहा गया कि "उनकी रचनाएँ आदर्शवाद से प्रेरित हैं जिनमें उनकी मातृभूमि सार्डिनिया द्वीप के जीवन को मूर्त स्पष्टता के साथ चित्रित किया गया है। वे मानवीय समस्याओं को गहराई एवं सहानुभूति से प्रस्तुत करती हैं"। नोबल मिलने का समाचार सुनकर उनकी प्रतिक्रिया अद्‌भुत थी। उन्होंने पूछा– "Già?"— अर्थात् "इतनी जल्दी?" पुरस्कार की घोषणा के दिन भी उन्होंने अपना हर रोज़ लिखने का नियम नहीं तोड़ा और किसी सामान्य दिन की ही भाँति पढ़ती-लिखती रहीं। हाँ, उनका पालतू कौवा चेक्का ज़रूर बार-बार आने वाले पत्रकारों और आगंतुकों की भीड़ से चिढ़ गया था।

यद्यपि यह अफ़वाहें चलीं कि राजनीतिक वजहों से उनकी हमवतन लेखिका मतील्दे सेराओ को न चुनकर नोबेल समिति ने उन्हें चुना लेकिन समय की अग्निपरीक्षा में उनका साहित्य सोना बनकर निखरा। उनकी विरासत दीर्घजीवी सिद्ध हुई। उनका लेखन उत्तरवर्ती सार्डिनियाई लेखकों जिनमें सर्जियो अत्ज़ेनी, जूलियो आंज़ियोनी और साल्वातोरे मानुज़्ज़ु का नाम शामिल है को भी प्रेरित किया। इन्हीं लेखकों ने बीसवीं शताब्दी में "सार्डिनियन लिटरेरी स्प्रिंग" की शुरुआत की थी। 15 अगस्त 1936 को ग्राज़िया देलेद्दा का निधन रोम में हुआ। उन्हें स्तन कैंसर हो गया था। उनकी अंतिम रचनाओं में बीमारी और मृत्यु से उनका निजी सामना दिखलाई देता है। 1968 में नुओरो स्थित उनके बचपन का घर राष्ट्रीय धरोहर घोषित किया गया। अब वह म्यूज़ेओ देलेद्दियानो कहा जाता है जहाँ उनकी स्मृति सुरक्षित है। नुओरो में एक चर्च भी उनके नाम को समर्पित किया गया। 1985 में शुक्र ग्रह के एक क्रेटर का नाम "देलेद्दा" रखा गया।

इतालवी कहानी : फटा हुआ बूट

ग्राज़िया देलेद्दा

अनुवाद : सुखवीर

एलिया कचहरी में बेकार-सा रहता था। उन दिनों लोग कचहरी से दूर ही रहना पसंद करते थे। बड़े से बड़े वकील भी छोटे-छोटे मुक़दमे लेने के लिए मज़बूर थे। एलिया के पास तो कोई भी मुक़दमा न आता, फिर भी वह कचहरी में जाता और वहाँ एकांत में बैठकर अपनी पत्नी को संबोधित करके कविताएँ लिखा करता।

एक दिन रास्ते में एक परिचित गाड़ीवान ने एलिया को रोकते हुए कहा, मैं अभी-अभी तेर्सनोवा से आ रहा हूँ, वहाँ मैं तुम्हारे चाचा से

मिला था। वे सख़्त बीमार हैं। एलिया घर लौटा तो उसकी पत्नी घर के सामने धूप में खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। एलिया ने चाचा की बीमारी की ख़बर उसे सुनाई तो उसके शांत-गंभीर चेहरे पर बेचैनी की बजाय रहस्यमयी मुस्कराहट आई। उसे देखकर एलिया के होंठों पर भी मुस्कराहट आई।

तो मैं जाता हूँ, एलिया ने कहा। आगे वह कुछ न बोला। पत्नी उसके मन की बात समझ गई। चाचा मरने पर अपनी सारी संपत्ति उसे दे जाने वाला था। तभी उसने पति के फटे हुए बूट की ओर देखते हुए पूछा, रास्ते के ख़र्चे का भी कुछ ख़याल किया है?

"इसकी चिंता न करो। मेरे पास थोड़े से पैसे हैं।

एलिया अपने चाचा के शहर के लिए रवाना हो गया। रास्ते में वह तेज़ी से चलता हुआ अपने फटे बूट के बारे में सोच रहा था कि वह उसे किसी न किसी तरह चाचा के घर तक पहुँचा दे तो बहुत अच्छा हो।

रात हुई तो ठंड बढ़ने लगी। एलिया को लगा कि उसके पाँव ठंड को जैसे छूने लगे हों। उसने अपने ख़स्ता बूट की तरफ़ देखा, जो अब मरम्मत करने के लायक़ भी नहीं रह गया था। उसे पहनकर चलने में बड़ी तकलीफ़ हो रही थी। फिर यह ख़याल भी तकलीफ़ दे रहा था कि ऐसा बूट पहनकर चाचा के घर में जाना बेइज़्ज़ती वाली बात होगी, लेकिन कोई चारा नहीं था। तब वह बूट की ओर से ध्यान हटाकर चाचा की संपत्ति पाने और भविष्य में सुखी जीवन बिताने के बारे में सोचने लगा।

एक गाँव आने पर वह रात बिताने के लिए एक धर्मशाला में ठहरा। कम किराए में उसे एक गंदी, छोटी-सी कोठरी मिली। वहाँ दो व्यक्ति पहले से ठहरे हुए थे। वे दोनों ही सोए हुए थे।

एलिया अपने उन्हीं कपड़ों में लेट गया, लेकिन नींद न आई। उसने अपने ख़यालों में संसार की सभी सड़कों पर और सभी घरों में अनगिनत बूट देखे, फिर तो जैसे उसे हर जगह बूट ही बूट दिखाई देने लगे। आख़िर उसे लगा कि जैसे उस कोठरी में भी बूट बिखरे पड़े हों। तभी वह अचानक उठ बैठा और सर्दी से काँपता हुआ नंगे पाँव बड़ी नरमी से चलता हुआ अपने बग़ल वाले मुसाफ़िर की खटिया के पास गया। उसका एक बूट उसने पहना ही था कि उसके तपते हुए पाँव में कोई चीज़ चुभी। उसने बूट उतार डाला, तभी कोठरी के बाहर से उसे अस्पष्ट-सी आवाज़ सुनाई दी तो डर के मारे उसके पाँव वहीं के वहीं जम गए। और उसी समय उसने अपनी आत्मा की फटकार सुनी कि वह पतन के रास्ते पर जा रहा है। बाहर की आवाज़ जब बंद हो गई तो वह कोठरी में से निकला। वहाँ कोई नहीं था। एक तरफ़ लटकी हुई लालटेन मद्धिम-सी रोशनी कर रही थी। एलिया ने इधर-उधर देखा तो पास ही एक बूटों का जोड़ा दिखाई दिया। उसी समय उसने बिना कुछ सोचे एक बूट उठाकर अपने कोट में छिपा लिया। फिर एक नज़र वहाँ सोए पड़े चौकीदार की तरफ़ देखकर चुपके से फाटक खोलकर वह बाहर निकल गया।

लगभग आधा घंटा नंगे पाँव चलने के बाद उसे बूट पहनने का ख़याल आया। एक पत्थर पर बैठकर वह बूट को कुछ क्षण देखता रहा। आख़िर जब वह बूट पहनकर खड़ा हुआ तो उसके अंदर से आवाज़ आई, 'पतन! घोर पतन!' लेकिन आवाज़ की तनिक भी परवाह किए बिना वह चल पड़ा, अब वह पहले की तरह तेज़ी से नहीं चल रहा था। उसके क़दम लड़खड़ा रहे थे और वह बार-बार पीछे मुड़कर देखता था कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है।

प्रातःकाल का प्रकाश फैलने लगा तो एलिया का डर और बढ़ गया। उसके दिमाग़ में विचारों ने हलचल मचा दी। उसे लग रहा था कि राह चलते लोग उसकी चोरी भाँप लेंगे और फिर उसके चोर होने की ख़बर चारों ओर फैल जाएगी। आख़िर पकड़े जाने के डर से उसने फिर अपना पुराना बूट पहन लिया और चुराया हुआ बूट सड़क के एक तरफ़ फेंक दिया। तो भी उसका मन शांत न हुआ। रात की घटना रह-रहकर उसके सामने आने लगी। उसे बार-बार लग रहा था कि उस कोठरी के दोनों मुसाफ़िर उसके पीछे आ रहे होंगे। फिर इस ख़याल से उसका दिल काँप उठा कि उसके चोर होने की ख़बर उसकी पत्नी तक पहुँच गई तो अनर्थ हो जाएगा। संपत्ति पाने के पहले ही वह किस अध:पतन को पहुँच गया है!

चलते-चलते वह रुक गया और फिर लौट पड़ा। उसका फेंका हुआ बूट वहीं पड़ा था। उसे देखते हुए उसके मन में हलचल होने लगी। अगर वह उसे छिपा दे या ज़मीन में गाड़ दे तो भी वह चोरी उसकी आत्मा से छिपी तो नहीं रहेगी और वह चोरी उसके पूरे जीवन को कलंकित करती रहेगी...

अचानक उसने बूट उठाया और धर्मशाला की ओर चल पड़ा। वह धीरे-धीरे चल रहा था, ताकि अँधेरा होने पर धर्मशाला में पहुँचे। दिन-भर उसने कुछ नहीं खाया था और बड़ी थकान महसूस कर रहा था। उसके क़दम डगमगा रहे थे।

धर्मशाला में ख़ामोशी थी। उसने रात काटने के लिए जगह ली। फिर मौक़ा पाकर उसने वह बूट वहीं रख दिया, जहाँ से उठाया था और अपनी खटिया पर जाकर लेट गया। लेटते ही वह नींद में डूब गया। सुबह उठने पर उसने बचे-खुचे पैसों से डबलरोटी ख़रीदी और वहाँ से चल दिया।

बड़ा सुहाना मौसम था। एलिया अपना फटा हुआ बूट पहने स्वस्थ मन से चला जा रहा था। आख़िर जब वह अपने चाचा के घर पहुँचा तो पता लगा कि कुछ ही घंटे पहले वह चल बसा था। नौकरानी ने उसे बताया, मालिक ने आपका बहुत रास्ता देखा। तीन दिन पहले उन्होंने आपको तार भी भेजा था। वे कहा करते थे कि आप अकेले ही उनके वारिस हैं, लेकिन आपने उन्हें भुला दिया है। वे आपसे बहुत नाराज़ थे। जब आज सुबह भी आप नहीं आए तो उन्होंने अपनी सारी दौलत मछेरों के अनाथ बच्चों को दे दी।

एलिया लौटकर अपने घर आया। उसकी पत्नी ने सारा हाल सुनकर कहा, अच्छा ही हुआ, जो वह संपत्ति हमें नहीं मिली। जिस संपत्ति के मिलने से पहले ही आदमी अपनी ईमानदारी खो बैठे, उसका न मिलना ही अच्छा है।

एक जरूरी आत्मकथा : निवेदन

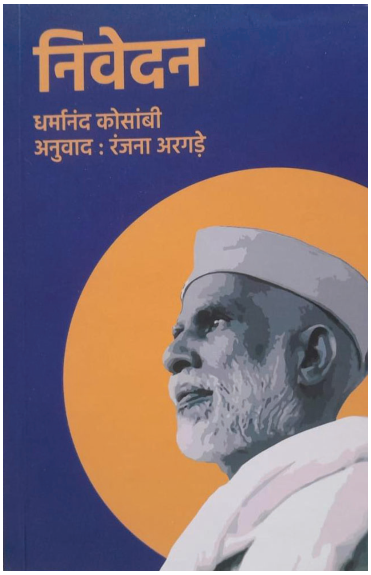

(संत-पुरुष धर्मानंद कोसांबी महात्मा गाँधी के समकालीन थे। साबरमती में उनके आश्रम में रहे और अंत में 'संथारा' करके देहत्याग किया। अत्यंत सामान्य परिवार और दुर्वह परिस्थितियों ने निकलकर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया और अमेरिका तक में तत्संबंधी अध्यापन भी किया। उनकी आत्मकथा उन्हीं की तरह सरल होते हुए भी उनके संघर्ष को मुखर और प्रेरक वाणी देती है। 'निवेदन' नाम से उनकी आत्मकथा गाँधी जी के सत्य के प्रयोग से भी पहले छपी। 499/- रु. मूल्य पर इसे लोकायत प्रकाशन, वाराणसी ने उपलब्ध करवाया है। एक सहज किन्तु गंभीर पुस्तक। –सं.)

ज्ञानार्जन का मार्ग अपने आप में सम्पूर्ण उपलब्धि है। यह कष्ट, संघर्ष और आनंद का एक मिला-जुला रूप हो सकता है। इस पर जो चलते हैं, वे जानते हैं। चलने के नितांत भौतिक अर्थ में, भारत में छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर आधुनिक काल तक विद्वान यात्रियों की समृद्ध परंपरा रही है– महावीर, बुद्ध, शंकर, नानक, कबीर और रविदास जैसे संतों ने अपने सफ़र के दौरान जो कुछ अर्जित किया उन्होंने समाज को सौंप दिया। इन विद्वानों ने समाज के सभी वर्गों को विवेक सम्पन्न, स्मृतिमान और करुणापूर्ण बनाने का प्रयास किया। आधुनिक भारत में यही काम धर्मानंद कोसांबी ने भी किया था।

उनकी आत्मकथा 'निवेदन' एक आधुनिक भारतीय मनुष्य का बहुत ही पारदर्शी और प्रामाणिक विवरण है। यह निचाट अकेली या चल रहे एक विद्वान की आत्मा को सबके सामने प्रस्तुत कर देने का शुरुआती भारतीय प्रयास भी है। अपनी पैदाइश की जगहों से सात समंदर पार तक का उनका विवरण औपनिवेशिक भारत में एक सामान्य मनुष्य की आत्मिक और शैक्षणिक उत्कर्ष की गाथा है लेकिन उसका स्वर बहुत ही नरम और सकुचाहट भरा है। इस आत्मकथा में जो मनुष्य भाव कोसंबी की आँखों में झिलमिलाता रहा है वह अविस्मरणीय है। 'सत्य' को गाँधी ने ईश्वर का रूप कहा था, उस सच को कोसांबी की आत्मकथा ने बहुत ही दृढ़ता के साथ रखा एक ऐसे समय में जब व्यक्ति के अंदर और बाहर हिंसा बढ़ी है, मैत्रीभाव कम हुआ है, तब लोग बुद्ध और उनके समानधर्मा मनुष्यों तरफ बड़ी आशा से देख रहे हैं। कोसंबी बुद्ध के द्वारा कल्पित वही मनुष्य हैं। और यह क्या सुंदर संयोग है कि कोसंबी भारतीय जन को बुद्ध से परिचित करवा रहे थे और उनकी अंदरुनी और बाहरी दुनिया बदल रही थी। 'निवेदन' उस दुनिया को दर्ज करती है।

समादृत विदुषी और सुपरिचित कवि रंजना अरगड़े ने मूल मराठी से हिन्दी भाषा में 'निवेदन' का यह प्रांजल और बिना अर्थ-क्षय सुंदर अनुवाद किया है, उसके लिए हिन्दी भाषा के पाठक सदैव कृतज्ञ रहेंगे। साथ ही सौ साल बाद इस अनूठी कृति को हिन्दी में उपलब्ध कराने के लिए लोकायत प्रकाशन वाराणसी को साधुवाद।

–रमाशंकर सिंह

काशीवास

(बौद्ध ज्ञानी आचार्य धर्मानंद कोसांबी की आत्मकथा 'निवेदन' से एक अंश)

काशी में छोटे-बड़े कई अन्नछत्र हैं। उनमें दो ही ऐसे हैं जहाँ किसी को भी प्रवेश मिल सकता है। एक मद्रास के किसी व्यापारी ने स्थापित किया है और दूसरा श्रीमंत महाराज जयाजीराव शिंदे ने स्थापित किया है। श्रीमंत जयाजीराव शिंदे जब काशी गए थे उस समय उनके मन में था कि काशी निवासी प्रत्येक कुटुंब-प्रेमी ब्राह्मण को सौ रुपए दक्षिणा दी जाए। पर काशी के पंडितों को यह बात जँची नहीं। किसी दशग्रंथी वैदिक या षटशास्त्री पंडित को या किसी निरक्षर ब्राह्मण को समान दक्षिणा मिले यह पंडितों की मंडली को बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा। तब श्रीमंत जयाजीराव नाराज हो कर बोले, "अगर यह प्रस्ताव सर्व-सम्मत न हो तो दक्षिणा के लिए अलग से निकाले गए ये छः लाख रुपए हम गंगा में डुबो देंगे!"

इस अवसर पर कुछ विचारवंत लोगों ने बीच-बचाव कर के श्रीमंत जयाजीराव को सलाह दी कि यह पैसे गंगा में डूबोने के बजाय इसे एक छत्र बनाने में खर्च करें। श्रीमंत जयाजीराव ने यह बात मान ली और पेशवों द्वारा बनाया गया बालाजी मंदिर अंग्रेजों के कब्जे से अपने कब्जे में लिया और वहाँ अन्नछत्र का आरंभ किया। इसी को अब 'बालाजी का अन्नछत्र' कहते हैं।

बालाजी के अन्नछत्र में सारस्वतों का प्रवेश है, पर उसके लिए वरिष्ठ अधिकारियों की अनुमति लेना आवश्यक है। और अगर यह अनुमति मिल भी जाए तो सारस्वतों को दूसरी पंगत में जिमाया जाता है। दूसरा कोई विकल्प न होने के कारण इसी अन्नछत्र में जाना मेरी मजबूरी थी। इसीलिए गोविंदराव पालेकर जी ने ग्वालियर के किसी अधिकारी से पत्र मँगा कर यहीं खाने की व्यवस्था करने के लिए कहा। डॉ. वागळे को इस संबंध में पत्र लिखा। परन्तु उन्होंने स्वयं कुछ न लिख कर श्रीयुत मालप से पत्र लिखने के लिए कहा। मालप का कहना था कि बालाजी अन्नछत्र में जाने का कोई कारण नहीं बनता; डॉ. वागळे रावराजे रघुनाथ राजवाडे से कहकर उनके अन्नछत्र में मेरी

व्यवस्था करवाने वाले हैं। रावराजे रघुनाथराव के पिता दिनकरराव का ब्रह्मघाट पर कहीं एक पंद्रह ब्राह्मणों का अन्नछत्र है। वहाँ अगर मेरी व्यवस्था हुई होती तो मेरे बहुत सारे कष्ट दूर हो जाते। पर डॉ. वागळे का स्वभाव संकोची था। उन्होंने रावराजे को पूछा ही नहीं। पर उनकी एक चिट्ठी से बालाजी अन्नछत्र में मेरी व्यवस्था हो जाती, वह भी उन्होंने नहीं की। मैं इधर डॉ. वागळे के पत्र की व्यर्थ प्रतीक्षा करता रहा।

संस्कृत अध्ययन की व्यवस्था

विद्याध्ययन की व्यवस्था सरलता से हो सकने वाली थी। काशी में किसी भी पंडित के यहाँ जाने पर वह बिना कुछ लिए मुफ्त सिखाते हैं। पर 'सत्य का पाथेय। जीवन में हो सदैव।।' ('घालावी ती खरी। गांठी धुरेसवे बरी।।') तुकोबा के इस कथन के सर्वथा अनुरूप सुप्रसिद्ध पंडित वे.शा.सं. गंगाधर शास्त्री जी के यहाँ अध्ययन करने का मैंने निश्चय किया। गोविंदराव जी को भी यह बात जँच गई। एक दिन दोपहर को मैं गंगाधर शास्त्रीजी का घर ढूँढ़ने निकला। घूमते-घामते उनके घर के पास पहुँचा। जमखिंड के सरदार खानदान के बाबासाहेब नाम के ये सज्जन लगभग बारह बरस से काशी में रह रहे थे। वे गंगाधर शास्त्री जी के पास शास्त्रों का अध्ययन कर रहे थे। एक दिन मीमांसा शास्त्र का पाठ सुन कर वे गुरु गृह से तभी ही अपने घर जाने के लिए निकले थे। उनकी और मेरी रास्ते में भेंट हो गई। "गंगाधर शास्त्री का घर क्या इसी ओर है?" ऐसा उनसे सवाल करने पर वे बोले, "आपको उनका घर क्यों चाहिए?"

"मुझे संस्कृत भाषा का अध्ययन करना है।"

"आपका अध्ययन कहाँ तक हुआ है?"

"मुझे रघुवंश के एक-दो सर्ग आते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। अभी कौमुदी पढ़ना आरंभ करना है।"

यह सुनकर बाबासाहेब आश्चर्य से भरी मुद्रा में बोले, "इस उम्र में शास्त्र पढ़कर आप क्या करेंगे? मुझे लगता है कि आपकी उम्र लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। अभी अगर कौमुदी का आरंभ करोगे तो इसका आपको क्या उपयोग होगा? इसके बदले अगर आप रेलवे आदि में नौकरी करोगे तो वह आपके अधिक काम की होगी। इस पढ़ाई के पीछे बेकार लगने से कोई लाभ नहीं है। मुझे इसका अनुभव है, इसीलिए आपको सलाह दे रहा हूँ। सामान्य रूप से एक शास्त्र का ज्ञान संपादित करने के लिए कितने साल लगते हैं, क्या यह आपको पता है?"

"कितने साल लगेंगे भला?"

"अरे भाई, केवल एक शास्त्र के अध्ययन के लिए बारह वर्ष लगते हैं। बारह साल! बारह साल आप यहां रहने के लिए तैयार हैं क्या?"

"अरे, बारह साल तो कोई अधिक नहीं हैं; बीस-पच्चीस साल लग जाएँ तो भी कोई बात नहीं, पर संस्कृत भाषा का ज्ञान अवश्य संपादित करना चाहिए, ऐसी मेरी सोच है।"

बाबासाहेब का आश्चर्य द्विगुणित हो गया ऐसा लगा। उन्होंने कहा, "क्या कह रहे हैं? बीस साल? अरे बीस साल बाद आपके अध्ययन का आपको क्या लाभ होने वाला है?"

मैंने हँसते-हँसते कहा, "ये देखिए, आप हिन्दू हैं। इस नाते आपका पुनर्जन्म में विश्वास होगा ही। क्यों, आप पुनर्जन्म में मानते हैं या नहीं?"

"वाह! पुनर्जन्म में मानता हूँ, इसमें क्या कोई संदेह है! पर उसका यहाँ क्या संबंध?"

"अरे भाई, मैं जो इतनी मेहनत करने वाला हूँ, वह इसलिए नहीं कि इस जन्म में उसका फल मुझे मिले। इस श्रम का फल मुझे अगले जन्म में मिलेगा। अगले जन्म में शास्त्राभ्यास सुलभ हो सकेगा। क्यों, आपको ऐसा नहीं लगता?"

सुनकर बाबासाहब सन्न रह गए। उन्होंने कहा, "आपका ऐसा विश्वास है, तो जाइए। कोशिश करिए। वह जो पास में दिख रहा है, वह गंगा शास्त्री जी का घर है।" ऐसा कह कर वे चले गए।

•

एक छोटी सी कविता

छुट्टी की अर्जी के लिए आवेदन का मज़मून

ओम प्रकाश तिवारी

(कवि, पत्रकार)

महोदय,
आज काम करने का मूड नहीं है
बच्चे की उंगली पकड़ कर
घूमना चाहता हूँ
करना चाहता हूँ पत्नी से गुफ्तगू
माता-पिता से भी फोन पर ही सही
करना चाहता हूँ लंबी बातचीत
भूल जाना चाहता हूँ

खुद को और खुदी को
दफ्तर और काम को
आदमी और समाज को
कोई गीत, कोई कविता,
कोई गजल गुनगुना चाहता हूँ

क्या छुट्टी माँगने वाले
किसी आवेदन का
ऐसा मजमून नहीं हो सकता?

•

असत्य के निष्क्रिय उपभोक्ता

किंजल आलोक

किंजल आलोक महाराष्ट्र नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, छत्रपति संभाजीनगर में पढ़ती हैं

अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष अब अलग-थलग घटनाएँ नहीं रह गए हैं। इस डिजिटल युग में, युद्ध की तस्वीरें लगातार देखी, साझा और चर्चा में रहती हैं। इससे यह सवाल उठता है: जब संघर्ष केवल मनोरंजन का एक और रूप बन जाता है, तो मानव अस्तित्व और राजनीति में हमारे दायित्वों के बारे में हमारी धारणा किस तरह बदलती हैं?

थियोडोर डब्ल्यू. एडोर्नो ने तर्क दिया था कि पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत संस्कृति का वस्तुकरण, सांस्कृतिक उत्पादों के बड़े पैमाने पर उत्पादन की ओर ले जाता है, जिन्हें वस्तुओं में बदल दिया जाता है, व्यक्तिगत इच्छाओं और विश्वासों को इस प्रकार ढाला जाता है कि वे शक्तिशाली लोगों के हितों के साथ संरेखित हो जाते हैं, जबकि उपभोक्ताओं की आलोचनात्मक विचार करने की क्षमता मंद पड़ जाती है।

मीडिया न केवल हमारा मनोरंजन करता है, बल्कि हमें प्रचलित सामाजिक मानदंडों को स्वीकार करने के लिए भी तैयार करता है। हालाँकि हम यह मान सकते हैं कि हमारे पास अद्वितीय और विविध दृष्टिकोण हैं, यह एक भ्रम है जिसे एडोर्नो ने "छद्म-व्यक्तिवाद" कहा है। एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति के प्रति हमारी प्राथमिकता के बावजूद, हम मूलतः अदृश्य शक्तियों और छुपे हुए एल्गोरिदम द्वारा विकसित एक आख्यान का अनुसरण कर रहे हैं। इससे भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि उद्योग एडोर्नो के शब्दों में "झूठी ज़रूरतें" रचने में सक्षम है– आकर्षक छवियों और निरंतर फ़ीड के पीछे एक ऐसी व्यवस्था छिपी है जो हमें आज़ाद करने के लिए नहीं, बल्कि हमें आराम से, चुपचाप और निरंतर आज्ञाकारी बनाए रखने के लिए डिज़ाइन की गई है।

इस प्रकार हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ युद्ध केवल बंदूकों और मिसाइलों से ही नहीं, बल्कि पिक्सल और बैंडविड्थ से भी लड़ा जा रहा है। गाजा में अपने घर के मलबे के पास अपनी माँ के अवशेष लिए बैठा एक बच्चा; बर्फ में खून से लथपथ एक यूक्रेनी सैनिक; बेलग्रेड में एक प्रदर्शनकारी को फुटपाथ पर घसीटा जा रहा है–यह सब हमारी हथेलियों में आ रहा है, हमारी स्क्रीन पर किसी खाने की रील और किसी मीम के बीच चमक रहा है। ऐसे दृश्य कभी दुनिया को थाम सकते थे; आज, वे अनगिनत ऐसी ही तस्वीरों की बाढ़ में खो गए हैं, पीड़ा को एक तमाशे में बदल रहे हैं। और जितना हम देखते हैं, उतना ही कम महसूस करते हैं।

इस प्रकार, संस्कृति उद्योग हमें इस हिंसा की वास्तविक समझ नहीं, बल्कि चिंता का मुखौटा पहने एक भटकाव प्रदान करता है। और यहाँ हम हिंसा के दर्शक बने खड़े हैं।

इसके अलावा, अब हम वास्तविकता को उसके कच्चे रूप में अनुभव नहीं करते; इसके बजाय, हम वही खोजते हैं जो हमारी सुख-सुविधाओं और मौजूदा मान्यताओं के साथ मेल खाता हो। एल्गोरिदम हमारे पूर्वाग्रहों के अनुरूप दुख के आख्यानों में हेरफेर करते हैं, संघर्ष को भावनात्मक रूप से पचने योग्य विषय-वस्तु की एक अनुकूलित धारा में बदल देते हैं। मानवीय पीड़ा को आलोचनात्मक चिंतन के लिए नहीं, बल्कि हमें व्यस्त और विचलित रखने के लिए नए सिरे से पैक और प्रसारित किया जाता है। हम जितना अधिक उसका उपभोग करते हैं, उतना ही हम उसके प्रति सुन्न होते जाते हैं। जैसे-जैसे भयावहता नियमित होती जाती है, वह अपना महत्व खोती जाती है। जब हम दुख को मनोरंजन के रूप में देखते हैं, तो हमारी सहानुभूति की क्षमता कम होती जाती है। दुख का यह सामान्यीकरण अपने आप में एक प्रकार की हिंसा है। और व्यवस्था हमारी संवेदनहीनता को स्वीकार करती है, उसकी सराहना करती है। यह हमें नई छवियों से, तेज़ी से, तब तक बमबारी करती है जब तक कि अगली मृत्यु हमें पहले जैसा महसूस न करा दे। इसके अलावा, जब हम संघर्ष के ऐसे चित्रणों से जुड़ते हैं, तो अक्सर हमारा सामना ऐसे स्थापित आख्यानों से होता है जो सत्ता में बैठे लोगों को लाभ पहुँचाते हैं। ऐसा करते हुए, वे सूक्ष्म रूप से जटिलता, ऐतिहासिक संदर्भों और बारीकियों को मिटा देते हैं, जिससे हम बिना किसी जाँच-पड़ताल को प्रोत्साहित किए पक्ष लेने की ओर धकेल दिए जाते हैं।

छवियों और पाठ के इस निरंतर प्रवाह के बीच, हम अपने अस्तित्व के नैतिक महत्व को त्याग देते हैं। हम सामूहिक स्मृति के बिना दर्शक बन गए हैं; नैतिकता की भावना के बिना भागीदार। हमारे फ़ोनों की चमकती स्क्रीन न केवल पीड़ितों की पीड़ा को उजागर करती है, बल्कि शोक करने, सवाल करने और उनके दुख के स्रोत को समझने में हमारी विफलता को भी उजागर करती है।

हर तस्वीर के पीछे एक कहानी छिपी होती है। हमसे पहले जो लोग इस पीड़ा से गुज़रे हैं, उनके प्रति हमारा यह कर्तव्य है कि हम उन कहानियों और आख्यानों की गहराई से जाँच करें और उनकी गहन पड़ताल करें जो हमें प्रस्तुत की जा रही हैं। निष्क्रिय दर्शकत्व से लड़ने के लिए, हमें चिंतन, भावनात्मक जुड़ाव और सत्य की खोज के लिए साहसिक कदम उठाने की अपनी क्षमता को पुनः प्राप्त करना होगा। आलेख द *टेलीग्राफ* आनलाइन से साभार।

राम की अग्निपरीक्षा

शशिकान्त जोशी
PracticalSanskrit.com

हाल ही में मैं एक हिन्दी काव्य गोष्ठी में गया था, जहाँ कई युवा और उभरते हुए कवि मिले। पर वहाँ मैंने बहुत-सी "आक्रोशपूर्ण" आवाज़ें भी सुनीं– और वह भी हमारे परम्परागत महाकाव्यों *रामायण* और *महाभारत* के विषय में। सीता की *अग्निपरीक्षा*, और महाभारत के युद्ध में "कुचालों" का प्रयोग। इस लेख में मैं केवल *अग्निपरीक्षा* की बात करूँगा, क्योंकि इस प्रश्न का समाधान वो लोग कभी नहीं कर पाए जो *वाल्मीकि रामायण* को पढ़ते ही नहीं।

अक्सर हम केवल मस्तिष्क का उपयोग करते हैं। पर कभी-कभी हृदय से भी महसूस करना उचित है– चाहे हम पुरुष ही क्यों न हों। इस विषय में प्रवेश करने से पहले मैं उन लोगों के लिए भूमिका बाँधना चाहूँगा जो वाल्मीकि रामायण का पूरा विवरण नहीं जानते।

संक्षिप्त कथा

राम अयोध्या के ज्येष्ठ राजकुमार थे, और उनके राज्याभिषेक की घोषणा अगले दिन के लिए हो चुकी थी। उनकी सौतेली माता कैकेयी, जिसे उसकी कुबड़ी दासी मंथरा ने बहका दिया था, ने अपने पति से पूर्व में प्राप्त दो वरदान माँगे। उसने राम के लिए वनवास– केवल अयोध्या से नहीं, बल्कि सभी मानव बस्तियों से निर्वासन– और अपने पुत्र भरत के लिए सिंहासन की माँग की। सभी ने इसका विरोध किया; लक्ष्मण ने तो यहाँ तक कहा कि साम्राज्य बलपूर्वक लेना चाहिए। पर राम ने कहा कि बड़ों की इच्छा के विरुद्ध सिंहासन छीनना जनमानस के लिए बुरा उदाहरण होगा, और वे वन चले गए।

जब सीता और नगरवासी उनके साथ चलने की प्रार्थना करने लगे, तो उन्होंने कहा यह दण्ड केवल उन्हीं का है, दूसरों का नहीं। पर सीता ने दृढ़ होकर कहा– "पत्नी कभी अपने पति को नहीं छोड़ सकती"। लक्ष्मण ने स्वयं को राम का "दास" घोषित किया और कहा कि स्वामी को अपने सेवक को साथ ले जाना ही होगा। इस प्रकार तीनों वन के लिए प्रस्थान करते हैं।

राम वर्षों तक वन में रहे– लोगों की सहायता करते हुए, राज्य को समझते हुए, वनवासियों से संबंध बनाते हुए। तभी रावण ने छल से सीता का अपहरण कर लिया और उन्हें लंका ले गया। राम ने, जो किसी भी बस्ती में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा से बंधे थे, सुग्रीव और हनुमान से सहायता माँगी। उनकी सेना के साथ राम ने रावण, उसके भाइयों और उसकी विशाल सेनाओं से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। रावण को ब्रह्मा से वरदान प्राप्त था कि कोई देव या दानव उसे नहीं मार सकता। केवल मानव या पशु ही उसका अंत कर सकते थे। राम, जो विष्णु के मानव अवतार थे, उसी के लिए नियत थे।

अग्निपरीक्षा

युद्धभूमि में विजय के पश्चात राम ने सीता को युद्ध भूमि पर ही बुलाने को कहा। राम ने भूमि की ओर देखते हुए सीता से कहा: "मैंने अपना नाम एक योद्धा के रूप में स्पष्ट कर दिया है, जिसने अपनी पत्नी को छुड़ाया। अब तुम स्वतंत्र हो, जहाँ चाहो जा सकती हो, और जिससे चाहो विवाह कर सकती हो।" सभी स्तब्ध रह गए। यह युद्ध तो सीता को लौटाने के लिए ही लड़ा गया था। स्वयं ब्रह्मा ने कहा: "क्या आप भूल गए हैं प्रभु, कि आप स्वयं विष्णु हैं? आप इस पापी से पृथ्वी को मुक्त करने आए थे। अब आपकी अपनी पत्नी लक्ष्मी आपके सामने खड़ी है - फिर आप क्यों उसे नहीं देख रहे?"

सीता, अपमानित होकर, चिता बनवाने का आदेश देती हैं। वह घोषणा करती हैं: "यदि मैं पवित्र हूँ तो अग्नि मुझे नहीं जलाएगी"। फिर अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर उनकी पवित्रता की गवाही देते हैं।

राम कहते हैं: "मैं तो जानता था कि तुम सदा पवित्र हो और रहोगी। अग्नि तुम्हें कभी हानि नहीं पहुँचा सकती। पर इन लोगों को, जो तुम्हारी दिव्यता को नहीं देख सकते, मैं कैसे समझाता? केवल वचन से तुम्हारा नाम निर्मल नहीं हो पाता।" युद्ध कांड और महाकाव्य इसके बाद अयोध्या वापसी और राज्याभिषेक के साथ समाप्त हो जाता है।

उत्तरकांड के आगे के अंशों में यह भी जोड़ा गया कि जब सीता गर्भवती थीं, तब पुनः अपवाद की बात जानकर राम ने उन्हें वाल्मीकि ऋषि के आश्रम भेज दिया, जहाँ उन्होंने जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया। लव-कुश के जन्म के बाद, सीता के भूमिप्रवेश के बाद, जब भी किसी यज्ञ में धर्मपत्नी की आवश्यकता होती तो सीता की स्वर्णप्रतिमा रखी जाती, क्योंकि राम ने पुनः विवाह नहीं किया।

शिल्पी का प्रसंग

इस प्रसंग को विस्तार देते हुए एक टीवी धारावाहिक में एक सुन्दर एवं भावुक दृश्य आता है। यज्ञ के लिए शिल्पी को सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनानी है। शिल्पी अंधा है, और वह राम से निवेदन करता है कि सीता का वर्णन करें ताकि वह प्रतिमा बना सके। सीता के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इस बार राम को देवता न मानकर मानव रूप में देखें, जैसा उन्होंने स्वयं को प्रस्तुत किया।

कल्पना कीजिए, आप उनकी स्थिति में हैं–

- अपने समय के सबसे बड़े साम्राज्य के उत्तराधिकारी, जिन्हें सब प्रेम और सम्मान करते हैं।

- चार भाइयों में सबसे बड़े, संसार की सबसे सुन्दर स्त्री से विवाह किया है।
- कल आपका राज्याभिषेक होना है।
- परन्तु सौतेली माँ की कुबड़ी दासी के उकसावे से वह माँग करती है कि आप 14 वर्षों के लिए वन चले जाएँ, और सिंहासन उसके पुत्र को मिल जाए।
- आप सब कुछ मुस्कराकर स्वीकार कर लेते हैं, जबकि आपका पराक्रमी भाई युद्ध करने को तैयार है, जबकि आपके पश्चात्तापी पिता आपसे विनती करते हैं कि उन्हें बन्दी बनाकर उनके आदेश को अस्वीकार कर दें।
- आप जीवन को एक लम्बे वनवास में बिताते हैं– कभी राक्षसों से युद्ध, कभी निर्मल नदियों से जल लाना, कभी दोपहर का भोजन करने के बाद अपनी प्रिय पत्नी द्वारा पकाए व्यंजन खाकर उसकी गोद में सिर रख कर शयन करना। समय बिताने के लिए आप उनके साथ राजनीति, संस्कृति, संबंध, प्रशासन और हर विषय पर चर्चा करते हैं।
- तभी वह छल से अपहरण कर ली जाती है।
- आप पागलों की तरह रोते हैं, पेड़ों और पक्षियों से उसकी खोज का संकेत पूछते हैं।
- आप कुछ मित्र बनाते हैं।
- आपको पता चलता है कि वह एक द्वीप पर बंदी है, उस राक्षस के पास जिसने देवताओं तक को परास्त कर दिया है।
- आप युद्ध करते हैं, दूसरों की सहायता करते हैं, उनसे सहायता पाते हैं, और समुद्र में शिलाएँ डालकर सबसे लम्बा सेतु बनाते हैं।
- आप अस्त्रों में पारंगत मायावी से लड़ते हैं, और एक-एक कर– दोनों ओर हताहत होते हुए– युद्ध जीतते हैं।
- आप अपनी पत्नी से मिलने के लिए तड़पते हैं, जिसके लिए यह सब किया था।
- और फिर भी आपको कहना पड़ता है: "तुम स्वतंत्र हो, जहाँ चाहो जाओ, किसी से भी विवाह कर लो। मुझे नहीं पता तुम्हारा चरित्र कैसा रहा।" आप भली-भाँति जानते हैं कि वह पवित्र है। और राजा होकर आप निश्चिन्त होकर यह भी कह सकते थे कि दुनिया चाहे जो सोचे, आपको परवाह नहीं।
- वह स्वयं को पवित्र सिद्ध करती है, और आप राजा बनकर लौटते हैं।
- वह गर्भवती है, अफवाहें उठती हैं, और आप एक बार फिर उसे छोड़ देते हैं।
- आपके दो पुत्र आपके पास आ गए हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश आपकी पत्नी ने अपवादों से थक कर स्वयं भूमि में प्रवेश कर लिया ।
- अब आपको एक यज्ञ के लिए उसकी प्रतिमा चाहिए।
- और अंधा शिल्पी आपसे निवेदन करता है कि उसका वर्णन करें।

अब आप क्या कहेंगे?
किस प्रकार आप उस पत्नी का वर्णन करेंगे, जो आपके शरीर की हर कोशिका में बसी है?
जो कभी आपसे अलग हुई ही नहीं?
जो आपके कठिन समय में आपके लिए शक्ति बनी रही?
जो केवल आपके धर्म और राजधर्म के कारण दो बार पीड़ा सह चुकी है?

क्या आप अपने कर्तव्य निभाते रहते? बिना डगमगाए? या निराश होकर सब छोड़ देते? क्या कठिन है– सब कुछ छोड़ देना, या सब कुछ सहना? और तब भी दूसरा विवाह न करना, जबकि राजाओं के लिए यह सामान्य बात थी।

राम के आलोचक

बहुत से लोग– जो किसी विषय में गहराई से समझ नहीं रखते, न कविता में, न समाज की सामूहिक मनोवृत्ति में, न सहस्रों वर्ष पूर्व लिखे गए शास्त्र में– राम की आलोचना करते रहे हैं। एक प्रचलित उदाहरण है कि उन्होंने सीता से *अग्निपरीक्षा* ली। पर सच यह है कि उन्होंने कभी सीता से कोई परीक्षा नहीं माँगी। सीता ने स्वयं यह मार्ग चुना अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए। लोग नहीं समझते कि राम का कार्य नारी-दमन नहीं था। **उन्होंने सदा के लिए सारी सम्भावित सामाजिक निन्दा अपने ऊपर ले ली और सीता को उससे बचा लिया।**

पति के रूप में, राजा के रूप में, नेता के रूप में उन्होंने यह व्यक्तिगत बलिदान उठाया। हम उनसे नाराज़ हो सकते हैं, उनके आचरण से दुःखी हो सकते हैं, पर किसी ने भी कभी सीता पर कोई आरोप नहीं लगाया। यह इसलिए हुआ क्योंकि राम ने यह सब जानबूझकर किया। यह सरल नहीं है– युद्ध जीतकर, पत्नी को वापस पाकर, और जब कोई भी आपसे संदेह करने की अपेक्षा नहीं करता– तब भी आप उसे त्याग दें। उन्होंने यह सब आगे चलकर उस पर किसी कलंक की सम्भावना से बचाने के लिए किया। क्या यही पुरुषोचित प्रेम की पराकाष्ठा नहीं है? यदि वास्तव में स्त्री-दमन होता, तो दशरथ, राम या लक्ष्मण किसी भी समय मंथरा या कैकेयी का वध कर सकते थे।

जब आप एक सौतेली माँ के कहने पर, जो एक कुबड़ी दासी के प्रभाव में है, एक विशाल साम्राज्य छोड़ चुके हों, वर्षों तक संन्यासी योद्धा की तरह वन में जीवन बिताया हो, अपनी पत्नी को अपहरण में खोया हो, कभी किसी और स्त्री की ओर न देखा हो, मित्र बनाए हों, एकत्रित सेना को लेकर युद्ध किया हो, और अपने युग के सबसे प्रचण्ड शत्रु को हराया हो–तब, केवल तब, और निश्चित रूप से तब ही, आपको यह अधिकार मिलता है कि आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

और जो कोई इस महापुरुष को तुच्छ दिखाने का प्रयास करता है, वह तो उनके चरणों का धूल का कण भी नहीं है, जो इस आत्मा की महत्ता के समय और स्थान में होने की योग्यता रखे। वह आदर्श पुरुष-मर्यादा पुरुषोत्तम राम।

आपका जीवन उनके उदाहरण से मार्गदर्शित हो। संदेह की घड़ी में आप उत्तर खोजें, न कि गलत निष्कर्षों पर पहुँचें।

पाब्लो नरूदा

सीधी सी बात

अनुवादक मंगलेश डबराल

शक्ति होती है मौन (पेड़ कहते हैं मुझसे)
और गहराई भी (कहती हैं जड़ें)
और पवित्रता भी (कहता है अन्न)

पेड़ ने कभी नहीं कहा :
'मैं सबसे ऊंचा हूँ!'

जड़ ने कभी नहीं कहा :
'मैं बेहद गहराई से आयी हूँ!'

और रोटी कभी नहीं बोली :
दुनिया में क्या है मुझसे अच्छा'

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

भ्रम सिर्फ बारी का है

बरसों बरस लगे
बीज को बहलाने में
भरपूर दरख्त बनाने में

बरसात नहलाती रही
धूप सहलाती रही
हवा आती रही
हवा जाती रही
बरसों बरस लगे धरा को
जड़ो की जगह बनाने में
बीज को दरख्त बनाने में

और तुम
संवेदनहीन शिकारी आए
ताज की कुल्हाड़ी लाये
और बरसों के पाले दरख़्त का पलों में क़त्ल कर दिया
हवा पानी धरा का बरसों का प्रयास विफल कर दिया

तुम्हारे बहरे कानों ने नहीं सुनी
कटते दरख़्त की दर्दीली चीत्कार तुम्हें लगा
कि धरा आसमान हवा बादल ने भी कहाँ सुनी होगी
अव्यक्त पुकार

लेकिन तुम यही समझ नहीं पाए कि
धरा और दरख्त होते हैं जनक और जनित

और अब जब चीख धरा नहीं सह पाई
धरा का सीना फटा
तुम्हारी चालाकी ने पहाड़ कटा कह दिया

और अब जब चीख अम्बर नहीं सह पाया
बादल का सीना चिरा
तुम्हारी चालाकी ने बादल फटा कह दिया

नदियों की व्याकुलता को बाढ़ भर कहा
क्योंकि उस में तुम्हारा बहुमंजिला नहीं बहा

बस्तियां बह गयी तुम्हें बस एक समाचार लगा
तुम सुरक्षित, तुम्हें सुरक्षित अपना घर बार लगा
स्वाभाविक है
जिसकी रगों में लहू नहीं लालच बहता हो
हैरत कैसे हो वो कैसा भी कुछ भी कहता हो

बस इतना भर समझ जाए तो काफी है
कि सवाल तैयारी का नहीं
सारा भ्रम सिर्फ बारी का है।

अमिता तिवारी, न्यूयार्क